प्रेमचंद

मानसरोवर

भाग 3

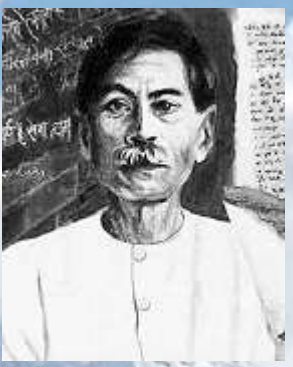

हिंदीकोश

www.hindikosh.in

Manasarovar – Part 3

By Premchand

यह पुस्तक प्रकाशनाधिकार मुक्त है क्योंकि इसकी प्रकाशनाधिकार अवधि समाप्त हो चुकी हैं।

This work is in the public domain in India because its term of copyright has expired.

यूनीकोड संस्करण: संजय खत्री. 2012

Unicode Edition: Sanjay Khatri, 2012

आवरण चित्र: विकिपीडिया (प्रेमचंद, मानसरोवर झील)

Cover image: Wikipedia.org (Premchand, Manasarovar Lake).

हिंदीकोश

Hindikosh.in

http://www.hindikosh.in

Contents

विश्वास....4
नरक का मार्ग....25
स्त्री और पुरुष....34
उद्धार....42
निर्वासन....52
नैराश्य लीला....61
कौशल....77
स्वर्ग की देवी....83
आधार....94
एक आंच की कसर....102
माता का हृदय....109
परीक्षा....120
तेंतर....124
नैराश्य....134
दंड....148
धिक्कार (2)....165

विश्वास

उन दिनो मिस जोसी बम्बई सभ्य-समाज की राधिका थी। थी तो वह एक छोटी सी कन्या पाठशाला की अध्यापिका पर उसका ठाट-बाट, मान-सम्मान बड़ी-बडी धन-रानियों को भी लज्जित करता था। वह एक बड़े महल में रहती थी, जो किसी जमाने में सतारा के महाराज का निवास-स्थान था। वहाँ सारे दिन नगर के रईसों, राजों, राज-कमचारियों का तांता लगा रहता था। वह सारे प्रांत के धन और कीर्ति के उपासकों की देवी थी। अगर किसी को खिताब का खब्त था तो वह मिस जोशी की खुशामद करता था। किसी को अपने या संबधी के लिए कोई अच्छा ओहदा दिलाने की धुन थी तो वह मिस जोशी की अराधना करता था। सरकारी इमारतों के ठीके; नमक, शराब, अफीम आदि सरकारी चीजों के ठीके; लोहे-लकड़ी, कल-पुरजे आदि के ठीके सब मिस जोशी ही के हाथो में थे। जो कुछ करती थी वही करती थी, जो कुछ होता था उसी के हाथो होता था। जिस वक्त वह अपनी अरबी घोड़ो की फिटन पर सैर करने निकलती तो रईसों की सवारियां आप ही आप रास्ते से हट जाती थी, बड़े दुकानदार खड़े हो-हो कर सलाम करने लगते थे। वह रूपवती थी, लेकिन नगर में उससे बढ़कर रूपवती रमणियां भी थी। वह सुशिक्षिता थीं, वक्चतुर थी, गाने में निपुण, हंसती तो अनोखी छवि से, बोलती तो निराली घटा से, ताकती तो बांकी चितवन से; लेकिन इन गुणो में उसका एकाधिपत्य न था। उसकी प्रतिष्ठा, शक्ति और कीर्ति का कुछ और ही रहस्य था। सारा नगर ही नही ; सारे प्रान्त का बच्चा जानता था कि बम्बई के गवर्नर मिस्टर जौहरी मिस जोशी के बिना दामों के गुलाम है।मिस जोशी की आंखो का इशारा उनके लिए नादिरशाही हुक्म है। वह थिएटरो में दावतों में, जलसों में मिस जोशी के साथ साये की भाँति रहते है। और कभी-कभी उनकी मोटर रात के सन्नाटे में मिस जोशी के मकान से निकलती हुई लोगो को दिखाई देती है। इस प्रेम में वासना की मात्रा अधिक है या भक्ति की, यह कोई नही जानता । लेकिन मिस्टर जौहरी विवाहित है और मिस जौशी विधवा, इसलिए जो लोग उनके प्रेम को कलुषित कहते है, वे उन पर कोई अत्याचार नहीं करते।

बम्बई की व्यवस्थापिका-सभा ने अनाज पर कर लगा दिया था और जनता की ओर से उसका विरोध करने के लिए एक विराट सभा हो रही थी। सभी नगरों से प्रजा के प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित होने के लिए हजारो की संख्या में आये थे। मिस जोशी के विशाला भवन के सामने, चौड़े मैदान में हरी-भरी घास पर बम्बई की जनता उपनी फरियाद सुनाने के लिए जमा थी। अभी तक सभापति न आये थे, इसलिए लोग बैठे गप-शप कर रहे थे। कोई कर्मचारी पर आक्षेप करता था, कोई देश की स्थिति पर, कोई अपनी दीनता पर—अगर हम लोगो में अगड़ने का जरा भी सामर्थ्य होता तो मजाल थी कि यह कर लगा दिया जाता, अधिकारियों का घर से बाहर निकलना मुश्किल हो जाता। हमारा जरुरत से ज्यादा सीधापन हमें अधिकारियों के हाथों का खिलौना बनाए हुए है। वे जानते हैं कि इन्हें जितना दबाते जाओ, उतना दबते जायेगें, सिर नहीं उठा सकते। सरकार ने भी उपद्रव की आंशका से सशस्त्र पुलिस बुला ली।ै उस मैदान के चारों कोनो पर सिपाहियों के दल डेरा डाले पड़े थे। उनके अफसर, घोड़ों पर सवार, हाथ में हंटर लिए, जनता के बीच में निश्शंक भाव से घोंड़े दौड़ाते फिरते थे, मानों साफ मैदान है। मिस जोशी के ऊंचे बरामदे में नगर के सभी बड़े-बड़े रईस और राज्याधिकारी तमाशा देखने के लिए बैठे हुए थे। मिस जोशी मेहमानों का आदर-सत्कार कर रही थीं और मिस्टर जौहरी, आराम-कुर्सी परलेटे, इस जन-समूह को घृणा और भय की दृष्टि से देख रहे थे।

सहसा सभापति महाशय आपटे एक किराये के तांगे पर आते दिखाई दिये। चारों तरफ हलचल मच गई, लोग उठ-उठकर उनका स्वागत करने दौड़े और उन्हें ला कर मंच पर बेठा दिया। आपटे की अवस्था ३०-३५ वर्ष से अधिक न थी ; दुबले-पतले आदमी थे, मुख पर चिन्ता का गाढ़ा रंग-चढ़ा हुआ था। बाल भी पक चले थे, पर मुख पर सरल हास्य की रेखा झलक रही थी। वह एक सफेद मोटा कुरता पहने थे, न पांव में जूते थे, न सिर पर टोपी। इस अद्धर्नग्न, दुर्बल, निस्तेज प्राणी में न जाने कौल-सा जादू था कि समस्त जनता उसकी

पूजा करती थी, उसके पैरों में न जाने कौन सा जादू था कि समस्त जरत उसकी पूजा करती थी, उसके पैरों पर सिर रगड़ती थी। इस एक प्राणी क हाथों में इतनी शक्ति थी कि वह क्षण मात्र में सारी मिलों को बंद करा सकता था, शहर का सारा कारोबार मिटा सकता था। अधिकारियों को उसके भय से नींद न आती थी, रात को सोते-सोते चौंक पड़ते थे। उससे ज्यादा भंयकर जन्तु अधिकारियों की दृष्टिमें दूसरा नथा। ये प्रचंड शासन-शक्ति उस एक हड्डी के आदमी से थरथर कांपती थी, क्योंकि उस हड्डी मेंएक पवित्र, निष्कलंक, बलवान और दिव्य आत्मा का निवास था।

2

आपटे नें मंच पर खड़ें होकरह पहले जनता को शांत चित्त रहने और अहिंसा-व्रत पालन करने का आदेश दिया। फिर देश में राजनितिक स्थिति का वर्णन करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि सामने मिस जोशी के बरामदे की ओर गई तो उनका प्रजा-दुख पीड़ित हृदय तिलमिला उठा। यहां अगणित प्राणी अपनी विपत्ति की फरियाद सुनने के लिए जमा थे और वहां मेंजो पर चाय और बिस्कुट, मेवे और फल, बर्फ और शराब की रेल-पेल थी। वे लोग इन अभागों को देख-देख हंसते और तालियां बजाते थे। जीवन में पहली बार आपटे की जबान काबू से बाहर हो गयी। मेघ की भांति गरज कर बोले—

'इधर तो हमारे भाई दाने-दाने को मुहताज हो रहे है, उधर अनाज पर कर लगाया जा रहा है, केवल इसलिए कि राजकर्मचारियों के हलवे-पूरी में कमी न हो। हम जो देश जो देश के राजा हैं, जो छाती फाड़ कर धरती से धन निकालते हैं, भूखों मरते हैं; और वे लोग, जिन्हें हमने अपने सुख और शाति की व्यवस्था करने के लिए रखा है, हमारे स्वामी बने हुए शराबों की बोतले उड़ाते हैं। कितनी अनोखी बात है कि स्वामी भूखों मरें और सेवक शराबें उड़ायें, मेवे खायें और इटली और स्पेन की मिठाइयां चलें! यह किसका अपराध है? क्या सेवकों का? नहीं, कदापि नहीं, हमारा ही अपराध है कि हमने अपने सेवकों को इतना

अधिकार दे रखा है। आज हम उच्च स्वर से कह देना चाहते हैं कि हम यह क्रूर और कुटिल व्यवहार नहीं सह सकते।यह हमारें लिए असह्य है कि हम और हमारे बाल-बच्चे दानों को तरसें और कर्मचारी लोग, विलास में डूबें हुए हमारे करूण-क्रन्दन की जरा भी परवा न करत हुए विहार करें। यह असह्य है कि हमारें घरों में चूल्हें न जलें और कर्मचारी लोग थिएटरों में ऐश करें, नाच-रंग की महफिलें सजायें, दावतें उड़ायें, वेश्चाओं पर कंचन की वर्षा करें। संसार में और ऐसा कौन ऐसा देश होगा, जहां प्रजा तो भूखी मरती हो और प्रधान कर्मचारी अपनी प्रेम-क्रिड़ा में मग्न हो, जहां स्त्रियां गलियों में ठोकरें खाती फिरती हों और अध्यापिकाओं का वेष धारण करने वाली वेश्याएं आमोद-प्रमोद के नशें में चूर हों...

3

एकाएक सशस्त्र सिपाहियों के दल में हलचल पड़ गई। उनका अफसर हुक्म दे रहा था—सभा भंग कर दो, नेताओं को पकड़ लो, कोई न जाने पाए। यह विद्रोहात्मक व्याख्यान है।

मिस्टर जौहरी ने पुलिस के अफसर को इशारे पर बुलाकर कहा—और किसी को गिरफ्तार करने की जरुरत नहीं। आपटे ही को पकड़ो। वही हमारा शत्रु है।

पुलिस ने डंडे चलने शुरु किये। और कई सिपाहियों के साथ जाकर अफसर ने अपटे का गिरफ्तार कर लिया।

जनता ने त्यौरियां बदलीं। अपने प्यारे नेता को यों गिरफ्तार होते देख कर उनका धैर्य हाथ से जाता रहा।

लेकिन उसी वक्त आपटे की ललकार सुनाई दी—तुमने अहिंसा-व्रत लिया है ओर अगर किसी ने उस व्रत को तोड़ा तो उसका दोष मेरे सिर होगा। मैं तुमसे

सविनय अनुरोध करता हूं कि अपने-अपने घर जाओं। अधिकारियों ने वही किया जो हम समझते थे। इस सभा से हमारा जो उद्देश्य था वह पूरा हो गया। हम यहां बलवा करने नहीं , केवल संसार की नैतिक सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जमा हुए थे, और हमारा उद्देश्य पूरा हो गया।

एक क्षण में सभा भंग हो गयी और आपटे पुलिस की हवालात में भेज दिए गये

4

मिस्टर जौहरी ने कहा—बच्चा बहुत दिनों के बाद पंजे में आए हैं, राज-द्रोह कामुकदमा चलाकर कम से कम १० साल के लिए अंडमान भेंजूगां।

मिस जोशी—इससे क्या फायदा?

'क्यों? उसको अपने किए की सजा मिल जाएगी।'

'लेकिन सोचिए, हमें उसका कितना मूल्य देना पड़ेगा। अभी जिस बात को गिने-गिनाये लोग जानते हैं, वह सारे संसार में फैलेगी और हम कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगें। आप अखबारों में संवाददाताओं की जबान तो नहीं बंद कर सकते।'

'कुछ भी हो मैं इसे जोल में सड़ाना चाहता हूं। कुछ दिनों के लिए तो चैन की नींद नसीब होगी। बदनामी से डरना ही व्यर्थ है। हम प्रांत के सारे समाचार-पत्रों को अपने सदाचार का राग अलापने के लिए मोल ले सकते हैं। हम प्रत्येक लांछन को झूठ साबित कर सकते हैं, आपटे पर मिथ्या दोषारोपरण का अपराध लगा सकते हैं।'

'मैं इससे सहज उपाय बतला सकती हूं। आप आपटे को मेरे हाथ में छोड़ दीजिए। मैं उससे मिलूंगी और उन यंत्रों से, जिनका प्रयोग करने में हमारी जाति सिद्धहस्त है, उसके आंतरिक भावों और विचारों की थाह लेकर आपके

सामने रख दूंगी। मैं ऐसे प्रमाण खोज निकालना चाहती हूं जिनके उत्तर में उसे मुंह खोलने का साहस न हो, और संसार की सहानुभूति उसके बदले हमारे साथ हो। चारों ओर से यही आवाज आये कि यह कपटी ओर धूर्त था और सरकर ने उसके साथ वही व्यवहार किया है जो होना चाहिए। मुझे विश्वास है कि वह षड्यंत्रकारियों को मुखिया है और मैं इसे सिद्ध कर देना चाहती हूं। मैं उसे जनता की दृष्टि में देवता नहीं बनाना चाहतीं हूं, उसको राक्षस के रुप में दिखाना चाहती हूं।

'ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जिस पर युवती अपनी मोहिनी न डाल सके।'

'अगर तुम्हें विश्वास है कि तुम यह काम पूरा कर दिखाओंगी, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं तो केवल उसे दंड देना चाहता हूं।'

'तो हुक्म दे दीजिए कि वह इसी वक्त छोड़ दिया जाय।'

'जनता कहीं यह तो न समझेगी कि सरकार डर गयी?'

'नहीं, मेरे ख्याल में तो जनता पर इस व्यवहार का बहुत अच्छा असर पड़ेगा। लोग समझेगें कि सरकार ने जनमत का सम्मान किया है।'

'लेकिन तुम्हें उसेक घर जाते लोग देखेंगे तो मन में क्या कहेंगे?'

'नकाब डालकर जाऊंगी, किसी को कानोंकान खबर न होगी।'

'मुझे तो अब भी भय है कि वह तुम्हे संदेह की दृष्टि से देखेगा और तुम्हारे पंजे में न आयेगा, लेकिन तुम्हारी इच्छा है तो आजमा देखों।'

यह कहकर मिस्टर जौहरी ने मिस जोशी को प्रेममय नेत्रों से देखा, हाथ मिलाया और चले गए।

आकाश पर तारे निकले हुए थे, चैत की शीतल, सुखद वायु चल रही थी, सामने के चौड़े मैदान में सन्नाटा छाया हुआ था, लेकिन मिस जोशी को ऐसा मालूम हुआ मानों आपटे मंच पर खड़ा बोल रहा है। उसक शांत, सौम्य, विषादमय स्वरुप उसकी आंखों में समाया हुआ था।

5

प्रात:काल मिस जोशी अपने भवन से निकली, लेकिन उसके वस्त्र बहुत साधारण थे और आभूषण के नाम शरीर पर एक धागा भी नथा। अलंकार-विहीन हो कर उसकी छवि स्वच्छ, जल की भांति और भी निखर गयी। उसने सड़क पर आकर एक तांगा लिया और चली।

आपटे का मकान गरीबों के एक दूर के मुहल्ले में था। तांगेवाला मकान का पता जानता था। कोई दिक्कत न हुई। मिस जोशी जब मकान के द्वार पर पहुंची तो न जाने क्यों उसका दिल धड़क रहा था। उसने कांपते हुए हाथों से कुंडी खटखटायी। एक अधेड़ औरत निकलकर द्वार खोल दिय। मिस जोशी उस घर की सादगी देख दंग रह गयी। एक किनारें चारपाई पड़ी हुई थी, एक टूटी आलमारी में कुछ किताबें चुनी हुई थीं, फर्श पर खिलने का डेस्क था ओर एक रस्सी की अलगनी पर कपड़े लटक रहे थे। कमरे के दूसरे हिस्से में एक लोहे का चूल्हा था और खाने के बरतन पड़े हुए थे। एक लम्बा-तगड़ा आदमी, जो उसी अधेड़ औरत का पति था, बैठा एक टूटे हुए ताले की मरम्मत कर रहा था और एक पांच-छ वर्ष का तेजस्वी बालक आपटे की पीठ पर चढ़ने के लिए उनके गले में हाथ डाल रहा था।आपटे इसी लोहार के साथ उसी घर में रहते थे। समाचार-पत्रों के लेख लिखकर जो कुछ मिलता उसे दे देते और इस भांति गृह-प्रबंध की चिंताओं से छुट्टी पाकर जीवन व्यतीत करते थें।

मिस जोशी को देखकर आपटे जरा चौंके, फिर खड़े होकर उनका स्वागत किया ओर सोचने लगे कि कहां बैठाऊं। अपनी दरिद्रता पर आज उन्हें जितनी लाज आयी उतनी और कभी न आयी थी। मिस जोशी उनका असमंजस देखकर चारपाई पर बैठ गयी और जरा रुखाई से बोली—मैं बिना बुलाये आपके यहां आने के लिए क्षमा मांगती हूं किंतु काम ऐसा जरुरी था कि मेरे आये बिना पूरा न हो सकता। क्या मैं एक मिनट के लिए आपसे एकांत में मिल सकती हूं।

आपटे ने जगन्नाथ की ओर देख कर कमरे से बाहर चले जाने का इशारा किया। उसकी स्त्री भी बाहर चली गयी। केवल बालक रह गया। वह मिस जोशी की ओर बार-बार उत्सुक आंखों से देखता था। मानों पूछ रहा हो कि तुम आपटे दादा की कौन हो?

मिस जोशी ने चारपाई से उतर कर जमीन पर बैठते हुए कहा—आप कुछ अनुमान कर सकते हैं कि इस वक्त क्यों आयी हूं।

आपटे ने झेंपते हुए कहा—आपकी कृपा के सिवा और क्या कारण हो सकता है?

मिस जोशी—नहीं, संसार इतना उदार नहीं हुआ कि आप जिसे गांलियां दें, वह आपको धन्यवाद दे। आपको याद है कि कल आपने अपने व्याख्यान में मुझ पर क्या-क्या आक्षेप किए थे? मैं आपसे जोर देकर कहती हूं किवे आक्षेप करके आपने मुझपर घोर अत्याचार किया है। आप जैसे सहृदय, शीलवान, विद्वान आदमी से मुझे ऐसी आशा न थी। मैं अबला हूं, मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है? क्या आपको उचित था कि एक अबला पर मिथ्यारोपण करें? अगर मैं पुरुष होती तो आपसे ड्यूल खेलने काक आग्रह करती । अबला हूं, इसलिए आपकी सज्जनता को स्पर्श करना ही मेरे हाथ में है। आपने मुझ पर जो लांछन लगाये हैं, वे सर्वथा निर्मूल हैं।

आपटे ने दृढ़ता से कहा—अनुमान तो बाहरी प्रमाणों से ही किया जाता है।

मिस जोशी—बाहरी प्रमाणों से आप किसी के अंतस्तल की बात नहीं जान सकते ।

आपटे—जिसका भीतर-बाहर एक न हो, उसे देख कर भ्रम में पड़ जाना स्वाभाविक है।

मिस जोशी—हां, तो वह आपका भ्रम है और मैं चाहती हूं कि आप उस कलंक को मिटा दे जो आपने मुझ पर लगाया है। आप इसके लिए प्रायश्चित करेंगे?

आपटे—अगर न करूं तो मुझसे बड़ा दुरात्मा संसार में न होगा।

मिस जोशी—आप मुझपर विश्वास करते हैं।

आपटे—मैंने आज तक किसी रमणी पर विश्वास नहीं किया।

मिस जोशी—क्या आपको यह संदेह हो रहा है कि मैं आपके साथ कौशल कर रही हूं?

आपटे ने मिस जोशी की ओर अपने सदय, सजल, सरल नेत्रों से देख कर कहा—बाई जी, मैं गंवार और अशिष्ट प्राणी हूं। लेकिन नारी-जाति के लिए मेरे हृदय में जो आदर है, वह श्रद्धा से कम नहीं है, जो मुझे देवताओं पर हैं। मैंने अपनी माता का मुख नहीं देखा, यह भी नहीं जानता कि मेरा पिता कौन था; किंतु जिस देवी के दया-वृक्ष की छाया में मेरा पालन-पोषण हुआ उनकी प्रेम-मूर्ति आज तक मेरी आंखों के सामने है और नारी के प्रति मेरी भक्ति को सजीव रखे हुए है। मै उन शब्दों को मुंह से निकालने के लिए अत्यंत दु:खी और लज्जित हूं जो आवेश में निकल गये, और मै आज ही समाचार-पत्रों में खेद प्रकट करके आपसे क्षमा की प्रार्थना करुंगा।

मिस जोशी का अब तक अधिकांश स्वार्थी आदमियों ही से साबिका पड़ा था, जिनके चिकने-चुपड़े शब्दों में मतलब छुपा हुआ था। आपटे के सरल विश्वास

पर उसका चित्त आनंद से गद्‌गद हो गया। शायद वह गंगा में खड़ी होकर अपने अन्य मित्रों से यह कहती तो उसके फैशनेबुल मिलने वालों में से किसी को उस पर विश्वास न आता। सब मुंह के सामने तो 'हां-हां' करते, पर बाहर निकलते ही उसका मजाक उड़ाना शुरु करते। उन कपटी मित्रों के सम्मुख यह आदमी था जिसके एक-एक शब्द में सच्चाई झलक रही थी, जिसके शब्द अंतस्तल से निकलते हुए मालूम होते थे।

आपटे उसे चुप देखकर किसी और ही चिंता में पड़े हुए थें।उन्हें भय हो रहा था अब मैं चाहे कितना क्षमा मांगू, मिस जोशी के सामने कितनी सफाइयां पेश करूं, मेरे आक्षेपों का असर कभी न मिटेगा।

इस भाव ने अज्ञात रुप से उन्हें अपने विषय की गुप्त बातें कहने की प्रेरणा की जो उन्हें उसकी दृष्टि में लघु बना दें, जिससे वह भी उन्हें नीच समझने लगे, उसको संतोष हो जाए कि यह भी कलुषित आत्मा है। बोले—मैं जन्म से अभागा हूं। माता-पिता का तो मुंह ही देखना नसीब न हुआ, जिस दयाशील महिला ने मुझे आश्रय दिया था, वह भी मुझे १३ वर्ष की अवस्था में अनाथ छोड़कर परलोक सिधार गयी। उस समय मेरे सिर पर जो कुछ बीती उसे याद करके इतनी लज्जा आती हे कि किसी को मुंह न दिखाऊं। मैंने धोबी का काम किया; मोची का काम किया; घोड़े की साईसी की; एक होटल में बरतन मांजता रहा; यहां तक कि कितनी ही बार क्षुधासे व्याकुल होकर भीख मांगी। मजदूरी करने को बुरा नहीं समझता, आज भी मजदूरी ही करता हूं। भीख मांगनी भी किसी-किसी दशा में क्षम्य है, लेकिन मैंने उस अवस्था में ऐसे-ऐसे कर्म किए, जिन्हें कहते लज्जा आती है—चोरी की, विश्वासघात किया, यहां तक कि चोरी के अपराध में कैद की सजा भी पायी।

मिस जोशी ने सजल नयन होकर कहा—आज यह सब बातें मुझसे क्यों कर रहे हैं? मैं इनका उल्लेख करके आपको कितना बदनाम कर सकतीं हूं, इसका आपको भय नहीं है?

आपटे ने हंसकर कहा—नहीं, आपसे मुझे भय नहीं है।

मिस जोशी—अगर मैं आपसे बदला लेना चाहूं, तो?

आपटे—जब मैं अपने अपराध पर लज्जित होकर आपसे क्षमा मांग रहा हूं, तो मेरा अपराध रहा ही कहाँ, जिसका आप मुझसे बदला लेंगी। इससे तो मुझे भय होता है कि आपने मुझे क्षमा नहीं किया। लेकिन यदि मैंने आपसे क्षमा न मांगी तो मुझसे तो बदला न ले सकतीं। बदला लेने वाले की आंखें यो सजल नहीं हो जाया करतीं। मैं आपको कपट करने के अयोग्य समझता हूं। आप यदि कपट करना चाहतीं तो यहां कभी न आतीं।

मिस जोशी—मै आपका भेद लेने ही के लिए आयी हूं।

आपटे—तो शौक से लीजिए। मैं बतला चुका हूं कि मैंने चोरी के अपराध में कैद की सजा पायी थी। नासिक के जेल में रखा गया था। मेरा शरीर दुर्बल था, जेल की कड़ी मेहनत न हो सकती थी और अधिकारी लोग मुझे कामचोर समझ कर बेंतो से मारते थे। आखिर एक दिन मैं रात को जेल से भाग खड़ा हुआ।

मिस जोशी—आप तो छिपे रुस्तम निकले!

आपटे— ऐसा भागा कि किसी को खबर न हुई। आज तक मेरे नाम वारंट जारी है और ५०० रु.का इनाम भी है।

मिस जोशी—तब तो मैं आपको जरुर पकड़ा दूंगी।

आपटे—तो फिर मैं आपको अपना असल नाम भी बता देता हूं। मेरा नाम दामोदर मोदी है। यह नाम तो पुलिस से बचने के लिए रख छोड़ा है।

बालक अब तक तो चुपचाप बैठा हुआ था। मिस जोशी के मुंह से पकड़ाने की बात सुनकर वह सजग हो गया। उन्हें डांटकर बोला—हमाले दादा को कौन पकड़ेगा?

मिस जोशी—सिपाही और कौन?

बालक—हम सिपाही को मालेंगे।

यह कहकर वह एक कोने से अपने खेलने वाला डंडा उठा लाया और आपटे के पास वीरोचिता भाव से खड़ा हो गया, मानो सिपाहियों से उनकी रक्षा कर रहा है।

मिस जोशी—आपका रक्षक तो बड़ा बहादुर मालूम होता है।

आपटे—इसकी भी एक कथा है। साल-भर होता है, यह लड़का खो गया था। मुझे रास्ते में मिला। मैं पूछता-पूछता इसे यहां लाया। उसी दिन से इन लोगों से मेरा इतना प्रेम हो गया कि मैं
इनके साथ रहने लगा।

मिस जोशी—आप अनुमान कर सकते हैं कि आपका वृतान्त सुनकर मैं आपको क्या समझ रही हूं।

आपटे—वही, जो मैं वास्तव में हूं....नीच, कमीना धूर्त....

मिस जोशी—नहीं, आप मुझ पर फिर अन्याय कर रहे है। पहला अन्याय तो क्षमा कर सकती हूं, यह अन्याय क्षमा नहीं कर सकती। इतनी प्रतिकूल दशाओं में पड़कर भी जिसका हृदय इतना पवित्र, इतना निष्कपट, इतना सदय हो, वह आदमी नहीं देवता है। भगवन्, आपने मुझ पर जो आक्षेप किये वह सत्य हैं। मैं आपके अनुमान से कहीं भ्रष्ट हूं। मैं इस योग्य भी नहीं हूं कि आपकी ओर ताक सकूं। आपने अपने हृदय की विशालता दिखाकर मेरा असली

स्वरुप मेरे सामने प्रकट कर दिया। मुझे क्षमा कीजिए, मुझ पर दया कीजिए।

यह कहते-कहते वह उनके पैंरो पर गिर पड़ी। आपटे ने उसे उठा लिया और बोले—ईश्वर के लिए मुझे लज्जित न करो।

मिस जोशी ने गद्‌गद कंठ से कहा---आप इन दुष्टों के हाथ से मेरा उद्धार कीजिए। मुझे इस योग्य बनाइए कि आपकी विश्वासपात्री बन सकूं। ईश्वर साक्षी है कि मुझे कभी-कभी अपनी दशा पर कितना दुख होता है। मैं बार-बार चेष्टा करती हूं कि अपनी दशा सुधारुं; इस विलासिता के जाल को तोड़ दूं, जो मेरी आत्मा को चारों तरफ से जकड़े हुए है, पर दुर्बल आत्मा अपने निश्चय पर स्थित नहीं रहती। मेरा पालन-पोषण जिस ढंग से हुआ, उसका यह परिणाम होना स्वाभाविक-सा मालूम होता है। मेरी उच्च शिक्षा ने गृहिणी-जीवन से मेरे मन में घृणा पैदा कर दी। मुझे किसी पुरुष के अधीन रहने का विचार अस्वाभाविक जान पड़ता था। मैं गृहिणी की जिम्मेदारियों और चिंताओं को अपनी मानसिक स्वाधीनता के लिए विष-तुल्य समझती थी। मैं तर्कबुद्धि से अपने स्त्रीत्व को मिटा देना चाहती थी, मैं पुरुषों की भांति स्वतंत्र रहना चाहती थी। क्यों किसी की पांबद होकर रहूं? क्यों अपनी इच्छाओं को किसी व्यक्ति के सांचे में ढालू? क्यों किसी को यह अधिकार दूं कि तुमने यह क्यों किया, वह क्यों किया? दाम्पत्य मेरी निगाह में तुच्छ वस्तु थी। अपने माता-पिता की आलोचना करना मेरे लिए अचित नहीं, ईश्वर उन्हें सद्‌गति दे, उनकी राय किसी बात पर न मिलती थी। पिता विद्‌वान् थे, माता के लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' था। उनमें रात-दिन वाद-विवाद होता रहता था। पिताजी ऐसी स्त्री से विवाह हो जाना अपने जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य समझते थे। वह यह कहते कभी न थकते थे कि तुम मेरे पांव की बेड़ी बन गयीं, नहीं तो मैं न जाने कहां उड़कर पहुंचा होता। उनके विचार मे सारा दोष माता की अशिक्षा के सिर था। वह अपनी एकमात्र पुत्री को मूर्खा माता से संसर्ग से दूररखना चाहते थे। माता कभी मुझसे कुछ कहतीं तो पिताजी उन

पर टूट पड़ते—तुमसे कितनी बार कह चुका कि लड़की को डांटो मत, वह स्वयं अपना भला-बुरा सोच सकती है, तुम्हारे डांटने से उसके आत्म-सम्मान का कितना धक्का लगेगा, यह तुम नहीं जान सकतीं। आखिर माताजी ने निराश होकर मुझे मेरे हाल पर छोड़ दिया और कदाचित् इसी शोक में चल बसीं। अपने घर की अशांति देखकर मुझे विवाह से और भी घृणा हो गयी। सबसे बड़ा असर मुझ पर मेरे कालेज की लेडी प्रिंसिपल का हुआ जो स्वयं अविवाहित थीं। मेरा तो अब यह विचार है कि युवको की शिक्षा का भार केवल आदर्श चरित्रों पर रखना चाहिए। विलास में रत, कालेजों के शौकिन प्रोफेसर विद्यार्थियों पर कोई अच्छा असर नहीं डाल सकते । मैं इस वक्त ऐसी बात आपसे कह रही हूं। पर अभी घर जाकर यह सब भूल जाऊंगी। मैं जिस संसार में हूँ, उसकी जलवायु ही दूषित है। वहां सभी मुझे कीचड़ में लतपत देखना चाहते है।, मेरे विलासासक्त रहने में ही उनका स्वार्थ है। आप वह पहले आदमी हैं जिसने मुझ पर विश्वास किया है, जिसने मुझसे निष्कपट व्यवहार किया है। ईश्वर के लिए अब मुझे भूल न जाइयेगा।

आपटे ने मिस जोशी की ओर वेदना पूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—अगर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी। मिस जोशी! हम सब मिट्टी के पुतले हैं, कोई निर्दोष नहीं। मनुष्य बिगड़ता है तो परिस्थितियों से, या पूर्व संस्कारों से । परिस्थितियों का त्याग करने से ही बच सकता है, संस्कारों से गिरने वाले मनुष्य का मार्ग इससे कहीं कठिन है। आपकी आत्मा सुन्दर और पवित्र है, केवल परिस्थितियों ने उसे कुहरे की भांति ढंक लिया है। अब विवेक का सूर्य उदय हो गया है, ईश्वर ने चाहातो कुहरा भी फट जाएगा। लेकिन सबसे पहले उन परिस्थितियों का त्याग करने को तैयार हो जाइए।

मिस जोशी—यही आपको करना होगा।

आपटे ने चुभती हुई निगाहों से देख कर कहा—वैद्य रोगी को जबरदस्ती दवा पिलाता है।

मिस जोशी –मैं सब कुछ करुगीं। मैं कड़वी से कड़वी दवा पियूंगी यदि आप पिलायेंगे। कल आप मेरे घर आने की कृपा करेंगे, शाम को?

आपटे—अवश्य आऊंगा।

मिस जोशी ने विदा देते हुए कहा—भूलिएगा नहीं, मैं आपकी राह देखती रहूंगी। अपने रक्षक को भी लाइएगा।

यह कहकर उसने बालक को गोद मे उठाया ओर उसे गले से लगा कर बाहर निकल आयी।

गर्व के मारे उसके पांव जमीन पर न पड़ते थे। मालूम होता था, हवामें उड़ी जा रही है, प्यास से तड़पते हुए मनुष्य को नदी का तट नजर आने लगा था।

6

दूसरे दिन प्रातःकाल मिस जोशी ने मेहमानों के नाम दावती कार्ड भेजे और उत्सव मनाने की तैयारियां करने लगी। मिस्टर आपटे के सम्मान में पार्टी दी जा रही थी। मिस्टर जौहरी ने कार्ड देखा तो मुस्कराये। अब महाशय इस जाल से बचकरह कहां जायेगे। मिस जोशी ने ने उन्हें फसाने के लिए यह अच्छी तरकीब निकाली। इस काम में निपुण मालूम होती है। मैने सकझा था, आपटे चालाक आदमी होगा, मगर इन आन्दोलनकारी विद्राहियों को बकवास करने के सिवा और क्या सूझ सकती है।

चार ही बजे मेहमान लोग आने लगे। नगर के बड़े-बड़े अधिकारी, बड़े-बड़े व्यापारी, बड़े-बड़े विद्वान, समाचार-पत्रों के सम्पादक, अपनी-अपनी महिलाओं के साथ आने लगे। मिस जोशी ने आज अपने अच्छे-से-अच्छे वस्त्र और

आभूषण निकाले हुए थे, जिधर निकल जाती थी मालूम होता था, अरुण प्रकाश की छटा चली आरही है। भवन में चारों ओर सुगंध की लपटे आ रही थीं और मधुर संगीत की ध्वनि हवा में गूंज रहीं थी।

पांच बजते-बजते मिस्टर जौहरी आ पहुंचे और मिस जोशी से हाथ मिलाते हुए मुस्करा कर बोले—जी चाहता है तुम्हारे हाथ चूम लूं। अब मुझे विश्वास हो गया कि यह महाशय तुम्हारे पंजे से नहीं निकल सकते।

मिसेज पेटिट बोलीं—मिस जोशी दिलों का शिकार करने के लिए ही बनाई गई है।

मिस्टर सोराब जी—मैंने सुना है, आपटे बिलकुल गंवार-सा आदमी है।

मिस्टर भरुचा—किसी यूनिवर्सिटी में शिक्षा ही नहीं पायी, सभ्यता कहां से आती?

मिस्टर भरुचा—आज उसे खूब बनाना चाहिए।

महंत वीरभद्र डाढ़ी के भीतर से बोले—मैंने सुना है नास्तिक है। वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करता।

मिस जोशी—नास्तिक तो मै भी हूं। ईश्वर पर मेरा भी विश्वास नहीं है।

महंत—आप नास्तिक हों, पर आप कितने ही नास्तिकों को आस्तिक बना देती हैं।

मिस्टर जौहरी—आपने लाख की बात की कहीं मंहत जी!

मिसेज भरुचा—क्यों महंत जी, आपको मिस जोशी ही न आस्तिक बनाया है क्या?

सहसा आपटे लोहार के बालक की उंगली पकड़े हुए भवन में दाखिल हुए। वह पूरे फैशनेबुल रईस बने हुए थे। बालक भी किसी रईस का लड़का मालूम होता था। आज आपटे को देखकर लोगो को विदित हुआ कि वह कितना सुदंर, सजीला आदमी है। मुख से शौर्य निकल रहा था, पोर-पोर से शिष्टता झलकती थी, मालूम होता था वह इसी समाज में पला है। लोग देख रहे थे कि वह कहीं चूके और तालियां बजायें, कही कदम फिसले और कहकहे लगायें पर आपटे मंचे हुए खिलाड़ी की भांति, जो कदम उठाता था वह सधा हुआ, जो हाथ दिखलाता था वह जमा हुआ। लोग उसे पहले तुच्छ समझते थे, अब उससे ईर्ष्या करने लगे, उस पर फबतियां उड़ानी शुरु कीं। लेकिन आपटे इस कला में भी एक ही निकला। बात मुंह से निकली ओर उसने जवाब दिया, पर उसके जवाब में मालिन्य या कटुता का लेश भी न होता था। उसका एक-एक शब्द सरल, स्वच्छ , चित्त को प्रसन्न करने वाले भावों में डूबा होता था। मिस जोशी उसकी वाक्यचातुरी पर फुल उठती थी?

सोराब जी—आपने किस यूनिवर्सिटी से शिक्षा पायी थी?

आपटे—यूनिवर्सिटी में शिक्षा पायी होती तो आज मैं भी शिक्षा-विभाग का अध्यक्ष होता।

मिसेज भरुचा—मैं तो आपको भयंककर जंतु समझती थी?

आपटे ने मुस्करा कर कहा—आपने मुझे महिलाओं के सामने न देखा होगा।

सहसा मिस जोशी अपने सोने के कमरे में गयी ओर अपने सारे वस्त्राभूषण उतार फैंके। उसके मुख से शुभ्र संकल्प का तेज निकल रहा था। नेंत्रो से दबी ज्योति प्रस्फुटित हो रही थी, मानों किसी देवता ने उसे वरदान दिया हो। उसने सजे हुए कमरे को घृणा से देखा, अपने आभूषणों को पैरों से ठुकरा दिया और एक मोटी साफ साड़ी पहनकर बाहर निकली। आज प्रात:काल ही उसने यह साड़ी मंगा ली थी।

उसे इस नेय वेश में देख कर सब लोग चकित हो गये। कायापलट कैसी? सहसा किसी की आंखों को विश्वास न आया; किंतु मिस्टर जौहरी बगलें बजाने लगे। मिस जोशी ने इसे फंसाने के लिए यह कोई नया स्वांग रचा है।

'मित्रों! आपको याद है, परसों महाशय आपटे ने मुझे कितनी गांलियां दी थी। यह महाशय खड़े हैं । आज मैं इन्हें उस दुर्व्यवहार का दण्ड देना चाहती हूं। मैं कल इनके मकान पर जाकर इनके जीवन के सारे गुप्त रहस्यों को जान आयी। यह जो जनता की भीड़ गरजते फिरते है, मेरे एक ही निशाने पर गिर पड़े। मैं उन रहस्यों के खोलने में अब विलंब न करुंगी, आप लोग अधीर हो रहे होगें। मैंने जो कुछ देखा, वह इतना भंयकर है कि उसका वृतांत सुनकर शायद आप लोगों को मूर्छा आ जायेगी। अब मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि यह महाशय पक्के देशद्रोही है....'

मिस्टर जौहरी ने ताली बजायी ओर तालियों के हॉल गूंज उठा।

मिस जोशी—लेकिन राज के द्रोही नहीं, अन्याय के द्रोही, दमन के द्रोही, अभिमान के द्रोही...

चारों ओर सन्नाटा छा गया। लोग विस्मित होकर एक दूसरे की ओर ताकने लगे।

मिस जोशी—गुप्त रुप से शस्त्र जमा किए है और गुप्त रुप से हत्याएँ की हैं...

मिस्टर जौहरी ने तालियां बजायी और तालियां का दौगड़ा फिर बरस गया।

मिस जोशी—लेकिन किस की हत्या? दु:ख की, दरिद्रता की, प्रजा के कष्टों की, हठधर्मी की ओर अपने स्वार्थ की।

चारों ओर फिर सन्नाटा छा गया और लोग चकित हो-हो कर एक दूसरे की ओर ताकने लगे, मानो उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं है।

मिस जोशी—महाराज आपटे ने डकैतियां की और कर रहे हैं...

अब की किसी ने ताली न बजायी, लोग सुनना चाहते थे कि देखे आगे क्या कहती है।

'उन्होंने मुझ पर भी हाथ साफ किया है, मेरा सब कुछ अपहरण कर लिया है, यहां तक कि अब मैं निराधार हूं और उनके चरणों के सिवा मेरे लिए कोई आश्रय नहीं है। प्राण्धार! इस अबला को अपने चरणों में स्थान दो, उसे डूबने से बचाओ। मैं जानती हूं तुम मुझे निराश न करोंगें।'

यह कहते-कहते वह जाकर आपटे के चरणों में गिर पड़ी। सारी मण्डली स्तंभित रह गयी।

7

एक सप्ता गुजर चुका था। आपटे पुलिस की हिरासत में थे। उन पर चार अभियोग चलाने की तैयारियां चल रहीं थी। सारे प्रांत में हलचल मची हुई थी। नगर में रोज सभाएं होती थीं, पुलिस रोज दस-पांच आदमियां को पकड़ती थी। समाचार-पत्रों में जोरों के साथ वाद-विवाद हो रहा था।

रात के नौ बज गये थे। मिस्टर जौहरी राज-भवन में मेंज पर बैठे हुए सोच रहे थे कि मिस जोशी को क्यों कर वापस लाएं? उसी दिन से उनकी छाती पर सांप लोट रहा था। उसकी सूरत एक क्षण के लिए आंखों से न उतरती थी।

वह सोच रहे थे, इसने मेरे साथ ऐसी दगा की! मैंने इसके लिएक्या कुछ नहीं किया? इसकी कौन-सी इच्छा थी, जो मैने पूरी नहीं की इसी ने मुझसे बेवफाई

की। नहीं, कभी नहीं, मैं इसके बगैर जिंदा नहीं रह सकता। दुनिया चाहे मुझे बदनाम करे, हत्यारा कहे, चाहे मुझे पद से हाथ धोना पड़े, लेकिन आपटे को नहीं छोड़ूगां। इस रोड़े को रास्ते से हटा दूंगा, इस कांटे को पहलू से निकाल बाहर करुंगा।

सहसा कमरे का दरवाजा खुला और मिस जाशी ने प्रवेश किया। मिस्टर जौहरी हकबका कर कुर्सी पर से उठ खड़े हुए, यह सोच रहे थे कि शायद मिस जोशी ने निराश होकर मेरे पास आयी हैं, कुछ रुखे, लेकिन नम्र भाव से बोले—आओ बाला, तुम्हारी याद में बैठा था। तुम कितनी ही बेवफाई करो, पर तुम्हारी याद मेरे दिल से नहीं निकल सकती।

मिस जोशी—आप केवल जबान से कहते है।

मिस्टर जौहरी—क्या दिल चीरकर दिखा दूं?

मिस जोशी—प्रेम प्रतिकार नहीं करता, प्रेम में दुराग्रह नहीं होता। आप मरे खून के प्यासे हो रहे हैं, उस पर भी आप कहते हैं, मैं तुम्हारी याद करता हूं। आपने मेरे स्वामी को हिरासत में डाल रखा है, यह प्रेम है! आखिर आप मुझसे क्या चाहते हैं? अगर आप समझ रहे हों कि इन सख्तियों से डर कर मै आपकी शरण आ जाऊंगी तो आपका भ्रम है। आपको अख्तियार है कि आपटे को काले पानी भेज दें, फांसी चढ़ा दें, लेकिन इसका मुझ परकोई असर न होगा।वह मेरे स्वमी हैं, मैं उनको अपना स्वामी समझती हूं। उन्होने अपनी विशाल उदारता से मेरा उद्धार किया । आप मुझे विषय के फंदो में फंसाते थे, मेरी आत्मा को कलुषित करते थे। कभी आपको यह खयाल आया कि इसकी आत्मा पर क्या बीत रही होगी? आप मुझे आत्मशुन्य समझते थे। इस देवपुरुष ने अपनी निर्मल स्वच्छ आत्मा के आकर्षण से मुझे पहली ही मुलाकात में खींच लिया। मैं उसकी हो गयी और मरते दम तक उसी की रहूंगी। उस मार्ग से अब आप हटा नहीं सकते। मुझे एक सच्ची आत्मा की जरुरत थी , वह मुझे मिल गयी।

उसे पाकर अब तीनों लोक की सम्पदा मेरी आंखो में तुच्छ है। मैं उनके वियोग में चाहे प्राण दे दूं, पर आपके काम नहीं आ सकती।

मिस्टर जौहरी—मिस जोशी । प्रेम उदार नहीं होता, क्षमाशील नहीं होता । मेरे लिए तुम सर्वस्व हो, जब तक मैं समझता हूं कि तुम मेरी हो। अगर तुम मेरी नहीं हो सकती तो मुझे इसकी क्या चिंता हो सकती है कि तुम किस दिशा में हो?

मिस जोशी—यह आपका अंतिम निर्णय है?

मिस्टर जौहरी—अगर मैं कह दूं कि हां, तो?

मिस जोशी ने सीने से पिस्तौल निकाल कर कहा—तो पहले आप की लाश जमीन पर फड़कती होगी और आपके बाद मेरी ,बोलिए। यह आपका अंतिम निर्णय निश्चय है?

यह कहकर मिस जोशी ने जौहरी की तरफ पिस्तौल सीधा किया। जौहरी कुर्सी से उठ खड़े हुए और मुस्कर बोले—क्या तुम मेरे लिए कभी इतना साहस कर सकती थीं? जाओं, तुम्हारा आपटे तुम्हें मुबारक हो। उस पर से अभियोग उठा लिया जाएगा। पवित्र प्रेम ही मे यह साहस है। अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हारा प्रेम पवित्र है। अगर कोई पुराना पापी भविष्यवाणी कर सकता है तो मैं कहता हूं, वह दिन दूर नहीं है, जब तुम इस भवन की स्वामिनी होगी। आपटे ने मुझे प्रेम के क्षेत्र में नहीं, राजनीति के क्षेत्र में भी परास्त कर दिया। सच्चा आदमी एक मुलाकात में ही जीवन बदल सकता है, आत्मा को जगा सकता है और अज्ञान को मिटा कर प्रकाश की ज्योति फैला सकता है, यह आज सिद्ध हो गया।

***

नरक का मार्ग

रात "भक्तमाल" पढ़ते-पढ़ते न जाने कब नींद आ गयी। कैसे-कैसे महात्मा थे जिनके लिए भगवत्-प्रेम ही सब कुछ था, इसी में मग्न रहते थे। ऐसी भक्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। क्या मैं वह तपस्या नहीं कर सकती? इस जीवन में और कौन-सा सुख रखा है? आभूषणों से जिसे प्रेम हो जाने , यहां तो इनको देखकर आंखे फूटती है;धन-दौलत पर जो प्राण देता हो वह जाने, यहां तो इसका नाम सुनकर ज्वर-सा चढ़ आता हैं। कल पगली सुशीला ने कितनी उमंगों से मेरा श्रृंगार किया था, कितने प्रेम से बालों में फूल गूंथे। कितना मना करती रही, न मानी। आखिर वही हुआ जिसका मुझे भय था। जितनी देर उसके साथ हंसी थी, उससे कहीं ज्यादा रोयी। संसार में ऐसी भी कोई स्त्री है, जिसका पति उसका श्रृंगार देखकर सिर से पांव तक जल उठे? कौन ऐसी स्त्री है जो अपने पति के मुंह से ये शब्द सुने—तुम मेरा परलोग बिगाड़ोगी, और कुछ नहीं, तुम्हारे रंग-ढंग कहे देते हैं---और मनुष्य उसका दिल विष खा लेने को चाहे। भगवान्! संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं। आखिर मैं नीचे चली गयी और 'भक्तमाल' पढ़ने लगी। अब वृंदावन बिहारी ही की सेवा करुंगी उन्हीं को अपना श्रृंगार दिखाऊंगी, वह तो देखकर न जलेगे। वह तो हमारे मन का हाल जानते हैं।

2

भगवान! मैं अपने मन को कैसे समझाऊं! तुम अंतर्यामी हो, तुम मेरे रोम-रोम का हाल जानते हो। मैं चाहती हुं कि उन्हें अपना इष्ट समझूं, उनके चरणों की सेवा करुं, उनके इशारे पर चलूं, उन्हें मेरी किसी बात से, किसी व्यवहार से नाममात्र, भी दु:ख न हो। वह निर्दोष हैं, जो कुछ मेरे भाग्य में था वह हुआ, न उनका दोष है, न माता-पिता का, सारा दोष मेरे नसीबों ही का है। लेकिन यह सब जानते हुए भी जब उन्हें आते देखती हूं, तो मेरा दिल बैठ जाता है, मुह पर मुरदनी सी-छा जाती है, सिर भारी हो जाता है, जी चाहता है इनकी सूरत न

देखूं, बात तक करने को जी नही चाहता; कदाचित् शत्रु को भी देखकर किसी का मन इतना क्लांत नहीं होता होगा। उनके आने के समय दिल में धड़कन सी होने लगती है। दो-एक दिन के लिए कहीं चले जाते हैं तो दिल पर से बोझ उठ जाता है। हंसती भी हूं, बोलती भी हूं, जीवन में कुछ आनंद आने लगता है लेकिन उनके आने का समाचार पाते ही फिर चारों ओर अंधकार! चित्त की ऐसी दशा क्यों है, यह मैं नहीं कह सकती। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि पूर्वजन्म में हम दोनों में बैर था, उसी बैर का बदला लेने के लिए उन्होंने मुझेसे विवाह किया है, वही पुराने संस्कार हमारे मन में बने हुए हैं। नहीं तो वह मुझे देख-देख कर क्यों जलते और मैं उनकी सूरत से क्यों घृणा करती? विवाह करने का तो यह मतलब नहीं हुआ करता! मैं अपने घर कहीं इससे सुखी थी। कदाचित् मैं जीवन-पर्यन्त अपने घर आनंद से रह सकती थी। लेकिन इस लोक-प्रथा का बुरा हो, जो अभागिन कनयाओं को किसी-न-किसी पुरुष के गलें में बांध देना अनिवार्य समझती है। वह क्या जानता है कि कितनी युवतियां उसके नाम को रो रही है, कितने अभिलाषाओं से लहराते हुए, कोमल हृदय उसके पैरो तल रौंदे जा रहे है? युवति के लिए पति कैसी-कैसी मधुर कल्पनाओं का स्रोत्र होता है, पुरुष में जो उत्तम है, श्रेष्ठ है, दर्शनीय है, उसकी सजीव मूर्ति इस शब्द के ध्यान में आते ही उसकी नजरों के सामने आकर खड़ी हो जाती है।लेकिन मेरे लिए यह शब्द क्या है। हृदय में उठने वाला शूल, कलेजे में खटकनेवाला कांटा, आंखो में गड़ने वाली किरकिरी, अंत:करण को बेधने वाला व्यंग बाण! सुशीला को हमेशा हंसते देखती हूं। वह कभी अपनी दरिद्रता का गिला नहीं करती; गहने नहीं हैं, कपड़े नहीं हैं, भाड़े के नन्हेंसे मकान में रहती है, अपने हाथों घर का सारा काम-काज करती है , फिर भी उसे रोते नहीं देखती अगर अपने बस की बात होती तो आज अपने धन को उसकी दरिद्रता से बदल लेती। अपने पतिदेव को मुस्कराते हुए घर में आते देखकर उसका सारा दु:ख दारिद्रय छूमंतर हो जाता है, छाती गज-भर की हो जाती है। उसके प्रेमालिंगन में वह सुख है, जिस पर तीनों लोक का धन न्योछावर कर दूं।

3

आज मुझसे जब्त न हो सका। मैंने पूछा—तुमने मुझसे किसलिए विवाह किया था? यह प्रश्न महीनों से मेरे मन में उठता था, पर मन को रोकती चली आती थी। आज प्याला छलक पड़ा। यह प्रश्न सुनकर कुछ बौखला-से गये, बगलें झाकने लगे, खीसें निकालकर बोले—घर संभालने के लिए, गृहस्थी का भार उठाने के लिए, और नहीं क्या भोग-विलास के लिए? घरनी के बिना यह आपको भूत का डेरा-सा मालूम होता था। नौकर-चाकर घर की सम्पति उडाये देते थे। जो चीज जहां पड़ी रहती थी, कोई उसको देखने वाला न था। तो अब मालूम हुआ कि मैं इस घर की चौकसी के लिए लाई गई हूं। मुझे इस घर की रक्षा करनी चाहिए और अपने को धन्य समझना चाहिए कि यह सारी सम्पति मेरी है। मुख्य वस्तु सम्पत्ति है, मै तो केवल चौकी दारिन हूं। ऐसे घर में आज ही आग लग जाये! अब तक तो मैं अनजान में घर की चौकसी करती थी, जितना वह चाहते हैं उतना न सही, पर अपनी बुद्धि के अनुसार अवश्य करती थी। आज से किसी चीज को भूलकर भी छूने की कसम खाती हूं। यह मैं जानती हूं। कोई पुरुष घर की चौकसी के लिए विवाह नहीं करता और इन महाशय ने चिढ़ कर यह बात मुझसे कही। लेकिन सुशीला ठीक कहती है, इन्हें स्त्री के बिना घर सुना लगता होगा, उसी तरह जैसे पिंजरे में चिड़िया को न देखकर पिंजरा सूना लगता है। यह हम स्त्रियों का भाग्य!

4

मालूम नहीं, इन्हें मुझ पर इतना संदेह क्यो होता है। जब से नसीब इस घर में लाया हैं, इन्हें बराबर संदेह-मूलक कटाक्ष करते देखती हूं। क्या कारण है? जरा बाल गुथवाकर बैठी और यह होठ चबाने लगे। कहीं जाती नहीं, कहीं आती नहीं, किसी से बोलती नहीं, फिर भी इतना संदेह! यह अपमान असह्य है। क्या मुझे अपनी आबरु प्यारी नहीं? यह मुझे इतनी छिछोरी क्यों समझते हैं, इन्हें मुझपर संदेह करते लज्जा भी नहीं आती? काना आदमी किसी को हंसते देखता है तो समझता है लोग मुझी पर हँस रहे है। शायद इन्हें भी यही बहम हो

गया है कि मैं इन्हें चिढ़ाती हूं। अपने अधिकार के बाहर से बाहर कोई काम कर बैठने से कदाचित् हमारे चित्त की यही वृत्ति हो जाती है। भिक्षुक राजा की गद्दी पर बैठकर चैन की नींद नहीं सो सकता। उसे अपने चारों तरफ शुत्र दिखायी देंगें। मै समझती हूं, सभी शादी करने वाले बुड्ढ़ो का यही हाल है।

आज सुशीला के कहने से मैं ठाकुर जी की झांकी देखने जा रही थी। अब यह साधारण बुद्धि का आदमी भी समझ सकता हैकि फूहड़ बहू बनकर बाहर निकलना अपनी हंसी उड़ाना है, लेकिन आप उसी वक्त न जाने किधर से टपक पड़े और मेरी ओर तिरस्कापूर्ण नेत्रों से देखकर बोले—कहाँ की तैयारी है?

मैंने कह दिया, जरा ठाकुर जी की झांकी देखने जाती हूं।

इतना सुनते ही त्योरियां चढ़ाकर बोले—तुम्हारे जाने की कुछ जरुरत नहीं। जो अपने पति की सेवा नहीं कर सकती, उसे देवताओं के दर्शन से पुण्य के बदले पाप होता। मुझसे उड़ने चली हो । मैं औरतों की नस-नस पहचानता हूं।

ऐसा क्रोध आया कि बस अब क्या कहूं। उसी दम कपड़े बदल डाले और प्रण कर लिया कि अब कभ दर्शन करने जाऊंगी। इस अविश्वास का भी कुछ ठिकाना है! न जाने क्या सोचकर रुक गयी। उनकी बात का जवाब तो यही था कि उसी क्षण घरसे चल खड़ी हुई होती, फिर देखती मेरा क्या कर लेते।

इन्हें मेरा उदास और विमन रहने पर आश्चर्य होता है। मुझे मन-में कृतघ्न समझते है। अपनी
समणमें इन्होने मरे से विवाह करके शायद मुझ पर एहसान किया है। इतनी बड़ी जायदाद और विशाल
सम्पत्ति की स्वामिनी होकर मुझे फूले न समाना चाहिए था, आठो पहरइनका यशगान करते रहना

चाहिये था। मैं यह सब कुछ न करके उलटे और मुंह लटकाए रहती हूं। कभी-कभी बेचारे पर दया आती
है। यह नहीं समझते कि नारी-जीवन में कोई ऐसी वस्तु भी है जिसे देखकर उसकी आंखों में स्वर्ग भी
नरकतुल्य हो जाता है।

5

तीन दिन से बीमार हैं। डाक्टर कहते हैं, बचने की कोई आशा नहीं, निमोनिया हो गया है। पर मुझे न जाने क्यों इनका गम नहीं है। मैं इनती वज्र-हृदय कभी न थी।न जाने वह मेरी कोमलता कहां चली गयी। किसी बीमार की सूरत देखकर मेरा हृदय करुणा से चंचल हो जाता था, मैं किसी का रोना नहीं सुन सकती थी। वही मैं हूं कि आज तीन दिन से उन्हें बगल के कमरे में पड़े कराहते सुनती हूं और एक बार भी उन्हें देखने न गयी, आंखो में आंसू का जिक्र ही क्या। मुझे ऐसा मालूम होता है, इनसे मेरा कोई नाता ही नहीं मुझे चाहे कोई पिशाचनी कहे, चाहे कुलटा, पर मुझे तो यह कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि इनकी बीमारी से मुझे एक प्रकार का ईर्ष्यामय आनंद आ रहा है। इन्होने मुझे यहां कारावास दे रखा था—मैं इसे विवाह का पवित्र नाम नहीं देना चाहती---यह कारावास ही है। मैं इतनी उदार नहीं हूं कि जिसने मुझे कैद मे डाल रखा हो उसकी पूजा करुं, जो मुझे लात से मारे उसक पैरो का चूंमू। मुझे तो मालूम हो रहा था। ईश्वर इन्हें इस पाप का दण्ड दे रहे है। मै निस्सकोंच होकर कहती हूं कि मेरा इनसे विवाह नहीं हुआ है। स्त्री किसी के गले बांध दिये जाने से ही उसकी विवाहिता नहीं हो जाती। वही संयोग विवाह का पद पा सकता है। जिंसमे कम-से-कम एक बार तो हृदय प्रेम से पुलकित हो जाय! सुनती हूं, महाशय अपने कमरे में पड़े-पड़े मुझे कोसा करते हैं, अपनी बीमारी का सारा बुखार मुझ पर निकालते हैं, लेकिन यहां इसकी परवाह नहीं। जिसकाह जी चाहे जायदाद ले, धन ले, मुझे इसकी जरुरत नहीं!

आज तीन दिन हुए, मैं विधवा हो गयी, कम-से-कम लोग यही कहते हैं। जिसका जो जी चाहे कहे, पर मैं अपने को जो कुछ समझती हूं वह समझती हूं। मैंने चूड़िया नहीं तोड़ी, क्यों तोड़? क्यों तोड़? मांग में सेंदुर पहले भी न डालती थी, अब भी नहीं डालती। बूढ़े बाबा का क्रिया-कर्म उनके सुपुत्र ने किया, मैं पास न फटकी। घर में मुझ पर मनमानी आलोचनाएं होती हैं, कोई मेरे गुंथे हुए बालों को देखकर नाक सिंकोड़ता हैं, कोई मेरे आभूषणों पर आंख मटकाता है, यहां इसकी चिंता नहीं। उन्हें चिढ़ाने को मैं भी रंग=-बिरंगी साड़िया पहनती हूं, और भी बनती-संवरती हूं, मुझे जरा भी दु:ख नहीं हैं। मैं तो कैद से छूट गयी। इधर कई दिन सुशीला के घर गयी। छोटा-सा मकान है, कोई सजावट न सामान, चारपाइयां तक नहीं, पर सुशीला कितने आनंद से रहती है। उसका उल्लास देखकर मेरे मन में भी भांति-भांति की कल्पनाएं उठने लगती हैं--- उन्हें कुत्सित क्यों कहुं, जब मेरा मन उन्हें कुत्सित नहीं समझता ।इनके जीवन में कितना उत्साह है।आंखे मुस्कराती रहती हैं, ओठों पर मधुर हास्य खेलता रहता है, बातों में प्रेम का स्रोत बहताहुआजान पड़ता है। इस आनंद से, चाहे वह कितना ही क्षणिक हो, जीवन सफल हो जाता है, फिर उसे कोई भूल नहीं सकता, उसी स्मृति अंत क के लिए काफी हो जाती है, इस मिजराब की चोट हृदय के तारों को अंतकाल तक मधुर स्वरों में कंपित रख कती है।

एक दिन मैने सुशीला से कहा---अगर तेरे पतिदेव कहीं परदेश चले जाए तो रोत-रोते मर जाएगी!

सुशीला गंभीर भाव से बोली—नहीं बहन, मरुगीं नहीं , उनकी याद सदैव प्रफुल्लित करती रहेगी, चाहे उन्हें परदेश में बरसों लग जाएं।

मैं यही प्रेम चाहती हूं, इसी चोट के लिए मेरा मन तड़पता रहता है, मै भी ऐसी ही स्मृति चाहती हूं जिससे दिल के तार सदैव बजते रहें, जिसका नशा नित्य छाया रहे।

रात रोते-रोते हिचकियां बंध गयी। न-जाने क्यो दिल भर आता था। अपना जीवन सामने एक बीहड़ मैदान की भांति फैला हुआ मालूम होता था, जहां बगूलों के सिवा हरियाली का नाम नहीं। घर फाड़े खाता था, चित्त ऐसा चंचल हो रहा था कि कहीं उड़ जाऊं। आजकल भक्ति के ग्रंथो की ओर ताकने को जी नहीं चाहता, कही सैर करने जाने की भी इच्छा नहीं होती, क्या चाहती हूं वह मैं स्वयं भी नहीं जानती। लेकिन मै जो जानती वह मेरा एक-एक रोम-रोम जानता है, मैं अपनी भावनाओं को संजीव मूर्ति हैं, मेरा एक-एक अंग मेरी आंतरिक वेदना का आर्तनाद हो रहा है। मेरे चित्त की चंचलता उस अंतिम दशा को पहंच गयी है, जब मनुष्य को निंदा की न लज्जा रहती है और न भय। जिन लोभी, स्वार्थी माता-पिता ने मुझे कुएं में ढकेला, जिस पाषाण-हृदय प्राणी ने मेरी मांग में सेंदुर डालने का स्वांग किया, उनके प्रति मेरे मन में बार-बार दुष्कामनाएं उठती हैं। मैं उन्हे लज्जित करना चाहती हूं। मैं अपने मुंह में कालिख लगा कर उनके मुख में कालिख लगाना चाहती हूं मैअपने प्राणदेकर उन्हे प्राणदण्ड दिलाना चाहती हूं।मेरा नारीत्व लुप्त हो गया है,। मेरे हृदय में प्रचंड ज्वाला उठी हुई है।

घर के सारे आदमी सो रहे है थे। मैं चुपके से नीचे उतरी , द्वार खोला और घर से निकली, जैसे कोई प्राणी गर्मी से व्याकुल होकर घर से निकले और किसी खुली हुई जगह की ओर दौड़े। उस मकान में मेरा दम घुट रहा था।

सड़क पर सन्नाटा था, दुकानें बंद हो चुकी थी। सहसा एक बुढियां आती हुई दिखायी दी। मैं डरी कहीं यह चुड़ैल न हो। बुढिया ने मेरे समीप आकर मुझे सिर से पांव तक देखा और बोली --- किसकी राह देख रही हो

मैंने चिढ़ कर कहा---मौत की!

बुढ़िया---तुम्हारे नसीबों में तो अभी जिन्दगी के बड़े-बड़े सुख भोगने लिखे हैं। अंधेरी रात गुजर गयी, आसमान पर सुबह की रोशनी नजर आ रही हैं।

मैने हंसकर कहा---अंधेरे में भी तुम्हारी आंखे इतनी तेज हैंकि नसीबों की लिखावट पढ़ लेती हैं?

बुढ़िया---आंखो से नहीं पढती बेटी, अक्ल से पढ़ती हूं, धूप में चूड़े नही सुफेद किये हैं। तुम्हारे दिन गये और अच्छे दिन आ रहे है। हंसो मत बेटी, यही काम करते इतनी उम्र गुजर गयी। इसी बुढ़िया की बदौलत जो नदी में कूदने जा रही थीं, वे आज फूलों की सेज पर सो रही है, जो जहर का प्याल पीने को तैयार थीं, वे आज दूध की कुल्लियां कर रही हैं। इसीलिए इतनी रात गये निकलती हू कि अपने हाथों किसी अभागिन का उद्धार हो सके तो करुं। किसी से कुछ नहीं मांगती, भगवान् का दिया सब कुछ घर में है, केवल यही इच्छा है उन्हे धन, जिन्हे संतान की इच्छा है उन्हें संतान, बस औरक्या कहूं, वह मंत्र बता देती हूं कि जिसकी जो इच्छा जो वह पूरी हो जाये।

मैंने कहा---मुझे न धन चाहिए न संतान। मेरी मनोकामना तुम्हारे बस की बात नहीं है।

बुढ़िया हंसी—बेटी, जो तुम चाहती हो वह मै जानती हूं; तुम वह चीज चाहती हो जो संसार में होते हुए स्वर्ग की है, जो देवताओं के वरदान से भी ज्यादा आनंदप्रद है, जो आकाश कुसुम है, गुलर का फूल है और अमावसा का चांद है। लेकिन मेरे मंत्र में वह शंक्ति है जो भाग्य को भी संवार सकती है। तुम प्रेम की प्यासी हो, मैं तुम्हे उस नाव पर बैठा सकती हूं जो प्रेम के सागर में, प्रेम की तंरगों पर क्रीड़ा करती हुई तुम्हे पार उतार दे।

मैने उत्कंठित होकर पूछा—माता, तुम्हारा घर कहां है।

बुढिया---बहुत नजदीक है बेटी, तुम चलों तो मैं अपनी आंखो पर बैठा कर ले चलूं।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यह कोई आकाश की देवी है। उसेक पीछ-पीछे चल पड़ी।

8

आह! वह बुढिया, जिसे मैं आकाश की देवी समझती थी, नरक की डाइन निकली। मेरा सर्वनाश हो गया। मैं अमृत खोजती थी, विष मिला, निर्मल स्वच्छ प्रेम की प्यासी थी, गंदे विषाक्त नाले में गिर पड़ी वह वस्तु न मिलनी थी, न मिली। मैं सुशीला का –सा सुख चाहती थी, कुलटाओं की विषय-वासना नहीं। लेकिन जीवन-पथ में एक बार उलटी राह चलकर फिर सीधे मार्ग पर आना कठिन है?

लेकिन मेरे अध:पतन का अपराध मेरे सिर नहीं, मेरे माता-पिता और उस बूढ़े पर है जो मेरा स्वामी बनना चाहता था। मैं यह पंक्तियां न लिखतीं, लेकिन इस विचार से लिख रही हूं कि मेरी आत्म-कथा पढ़कर लोगों की आंखे खुलें; मैं फिर कहती हूं कि अब भी अपनी बालिकाओ के लिए मत देखों धन, मत देखों जायदाद, मत देखों कुलीनता, केवल वर देखों। अगर उसके लिए जोड़ा का वर नहीं पा सकते तो लड़की को क्वारी रख छोड़ो, जहर दे कर मार डालो, गला घोंट डालो, पर किसी बूढ़े खूसट से मत ब्याहो। स्त्री सब-कुछ सह सकती है। दारुण से दारुण दु:ख, बड़े से बड़ा संकट, अगर नहीं सह सकती तो अपने यौवन-काल की उंमगो का कुचला जाना।

रही मैं, मेरे लिए अब इस जीवन में कोई आशा नहीं । इस अधम दशा को भी उस दशा से न बदलूंगी, जिससे निकल कर आयी हूं।

***

स्त्री और पुरुष

विपिन बाबू के लिए स्त्री ही संसार की सुन्दर वस्तु थी। वह कवि थे और उनकी कविता के लिए स्त्रियों के रुप और यौवन की प्रशसा ही सबसे चिंताकर्षक विषय था। उनकी दृष्टि में स्त्री जगत में व्याप्त कोमलता, माधुर्य और अलंकारों की सजीव प्रतिमा थी। जबान पर स्त्री का नाम आते ही उनकी आंखे जगमगा उठती थीं, कान खड़ें हो जाते थे, मानो किसी रसिक ने गाने की आवाज सुन ली हो। जब से होश संभाला, तभी से उन्होंने उस सुंदरी की कल्पना करनी शुरु की जो उसके हृदय की रानी होगी; उसमें ऊषा की प्रफुल्लता होगी, पुष्प की कोमलता, कुंदन की चमक, बसंत की छवि, कोयल की ध्वनि—वह कवि वर्णित सभी उपमाओं से विभूषित होगी। वह उस कल्पित मूर्ति के उपासक थे, कविताओं में उसका गुण गाते, वह दिन भी समीप आ गया था, जब उनकी आशाएं हरे-हरे पत्तों से लहरायेंगी, उनकी मुरादें पूरी हो होगी। कालेज की अंतिम परीक्षा समाप्त हो गयी थी और विवाह के संदेशे आने लगे थे।

2

विवाह तय हो गया। बिपिन बाबू ने कन्या को देखने का बहुत आग्रह किया, लेकिन जब उनके मांमू ने विश्वास दिलाया कि लड़की बहुत ही रुपवती है, मैंने अपनी आंखों से देखा है, तब वह राजी हो गये। धूमधाम से बारात निकली और विवाह का मुहूर्त आया। वधू आभूषणों से सजी हुई मंडप में आयी तो विपिन को उसके हाथ-पांव नजर आये। कितनी सुंदर उंगलिया थीं, मानों दीप-शिखाएं हो, अंगो की शोभा कितनी मनोहारिणी थी। विपिन फूले न समाये। दूसरे दिन वधू विदा हुई तो वह उसके दर्शनों के लिए इतने अधीर हुए कि ज्यों ही रास्ते में कहारों ने पालकी रखकर मुंह-हाथ धोना शुरु किया, आप चुपके से वधू के पास जा पहुंचे। वह घूंघट हटाये, पालकी से सिर निकाले बाहर झांक रही थी। विपिन की निगाह उस पर पड़ गयी। यह वह परम सुंदर रमणी

न थी जिसकी उन्होने कल्पना की थी, जिसकी वह बरसों से कल्पना कर रहे थे---यह एक चौड़े मुँह, चिपटी नाक, और फुले हुए गालों वाली कुरुपा स्त्री थी। रंग गोरा था, पर उसमें लाली के बदले सफदी थी; और फिर रंग कैसा ही सुंदर हो, रूप की कमी नहीं पूरी कर सकता। विपिन का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया--- हां! इसे मेरे ही गले पड़ना था। क्या इसके लिए समस्त संसार में और कोई न मिलता था? उन्हें अपने मांमू पर क्रोध आया जिसने वधू की तारीफों के पुल बांध दिये थे। अगर इस वक्त वह मिल जाते तो विपिन उनकी ऐसी खबर लेता कि वह भी याद करते।

जब कहारों ने फिर पालकियाँ उठायीं तो विपिन मन में सोचने लगा, इस स्त्री के साथ कैसे मैं बोलूगा, कैसे इसके साथ जीवन काटूँगा। इसकी ओर तो ताकने ही से घृणा होती है। ऐसी कुरुपा स्त्रियाँ भी संसार में हैं, इसका मुझे अब तक पता न था। क्या मुँह ईश्वर ने बनाया है, क्या आँखें है! मैं और सारे ऐबों की ओर से आंखे बंद कर लेता, लेकिन वह चौड़ा-सा मुँह! भगवान्! क्या तुम्हें मुझी पर यह वज्रपात करना था।

3

विपिन हो अपना जीवन नरक-सा जान पड़ता था। वह अपने मांमू से लड़ा। ससुर को लंबा खर्रा लिखकर फटकारा, मां-बाप से हुज्जत की और जब इससे शांति न हुई तो कहीं भाग जाने की बात सोचने लगा। आशा पर उसे दया अवश्य आती थी। वह अपने का समझाता कि इसमें उस बेचारी का क्या दोष है, उसने जबरदस्ती तो मुझसे विवाह किया नहीं। लेकिन यह दया और यह विचार उस घृणा को न जीत सकता था जो आशा को देखते ही उसके रोम-रोम में व्याप्त हो जाती थी। आशा अपने अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनती; तरह-तरह से बाल संवारती, घंटो आइने के सामने खड़ी होकर अपना श्रृंगार करती, लेकन विपिन को यह शुतुरगमज-से मालूम होते। वह दिल से चाहती थी कि उन्हें प्रसन्न करूँ, उनकी सेवा करने के लिए अवसर खोजा करती थी;

लेकिन विपिन उससे भागा-भागा फिरता था। अगर कभी भेंट हो जाती तो कुछ ऐसी जली-कटी बातें करने लगता कि आशा रोती हुई वहां से चली जाती।

सबसे बुरी बात यह थी कि उसका चरित्र भ्रष्ट होने लगा। वह यह भूल जाने की चेष्टा करने लगा कि मेरा विवाह हो गया है। कई-कई दिनों क आशा को उसके दर्शन भी न होते। वह उसके कह-कहे की आवाजे बाहर से आती हुई सुनती, झरोखे से देखती कि वह दोस्तों के गले में हाथ डालें सैर करने जा रहे है और तड़प कर रहे जाती।

एक दिन खाना खाते समय उसने कहा—अब तो आपके दर्शन ही नहीं होतें। मेरे कारण घर छोड़ दीजिएगा क्या ?

विपिन ने मुंह फेर कर कहा—घर ही पर तो रहता हूं। आजकल जरा नौकरी की तलाश है इसलिए दौड़-धूप ज्यादा करनी पड़ती है।

आशा—किसी डाक्टर से मेरी सूरत क्यों नहीं बनवा देते? सुनती हूं, आजकल सूरत बनाने वाले डाक्टर पैदा हुए है।

विपिन— क्यों नाहक चिढ़ती हो, यहां तुम्हे किसने बुलाया था?

आशा— आखिर इस मर्ज की दवा कौन करेंगा ?

विपिन— इस मर्ज की दवा नहीं है। जो काम ईश्चर से ने करते बना उसे आदमी क्या बना सकता है?

आशा – यह तो तुम्ही सोचो कि ईश्वर की भुल के लिए मुझे दंड दे रहे हो। संसार में कौन ऐसा आदमी है जिसे अच्छी सूरत बुरी लगती हो,किन तुमने किसी मर्द को केवल रूपहीन होने के कारण क्वांरा रहते देखा है, रूपहीन लड़कियां भी मां-बाप के घर नहीं बैठी रहतीं। किसी-न-किसी तरह उनका

निर्वाह हो ही जाता है; उसका पति उप पर प्राण ने देता हो, लेकिन दूध की मक्खी नहीं समझता।

विपिन ने झुंझला कर कहा—क्यों नाहक सिर खाती हो, मै तुमसे बहस तो नहीं कर रहा हूँ। दिल पर जब्र नहीं किया जा सकता और न दलीलों का उस पर कोई असर पड़ सकता है। मैं तुम्हे कुछ कहता तो नहीं हूं, फिर तुम क्यों मुझसे हुज्जत करती हो?

आशा यह झिड़की सुन कर चली गयी। उसे मालूम हो गया कि इन्होने मेरी ओर से सदा के लिए ह्रदय कठोर कर लिया है।

4

विपिन तो रोज सैर-सपाटे करते, कभी-कभी रात को गायब रहते। इधर आशा चिंता और नैराश्य से घुलते-घुलते बीमार पड़ गयी। लेकिन विपिन भूल कर भी उसे देखने न आता, सेवा करना तो दूर रहा। इतना ही नहीं, वह दिल में मानता था कि वह मर जाती तो गला छुटता, अबकी खुब देखभाल कर अपनी पसंद का विवाह करता।

अब वह और भी खुल खेला। पहले आशा से कुछ दबता था, कम-से-कम उसे यह धड़का लगा रहता था कि कोई मेरी चाल-ढ़ाल पर निगाह रखने वाला भी है। अब वह धड़का छुट गया। कुवासनाओं में ऐसा लिप्त हो गया कि मरदाने कमरे में ही जमघटे होने लगे। लेकिन विषय-भोग में धन ही का सर्वनाश होता, इससे कहीं अधिक बुद्धि और बल का सर्वनाश होता है। विपिन का चेहरा पीला लगा, देह भी क्षीण होने लगी, पसलियों की हड्डियां निकल आयीं आंखों के इर्द-गिर्द गढ़े पड़ गये। अब वह पहले से कहीं ज्यादा शोक करता, नित्य तेल लगता, बाल बनवाता, कपड़े बदलता, किन्तु मुख पर कांति न थी, रंग-रोगन से क्या हो सकता?

एक दिन आशा बरामदे में चारपाई पर लेटी हुई थी। इधर हफ्तों से उसने विपिन को न देखा था। उन्हे देखने की इच्छा हुई। उसे भय था कि वह सन आयेंगे, फिर भी वह मन को न रोक सकी। विपिन को बुला भेजा। विपिन को भी उस पर कुछ दया आ गयी आ गयी। आकार सामने खड़े हो गये। आशा ने उनके मुंह की ओर देखा तो चौक पड़ी। वह इतने दुर्बल हो गये थे कि पहचनाना मुशिकल था। बोली—तुम भी बीमार हो क्या? तुम तो मुझसे भी ज्यादा घुल गये हो।

विपिन—उंह, जिंदगी में रखा ही क्या है जिसके लिए जीने की फिक्र करुं !

आशा—जीने की फिक्र न करने से कोई इतना दुबला नहीं हो जाता। तुम अपनी कोई दवा क्यों नहीं करते?

यह कह कर उसने विपिन का दाहिन हाथ पकड़ कर अपनी चारपाई पर बैठा लिया। विपिन ने भी हाथ छुड़ाने की चेष्टा न की। उनके स्वाभाव में इस समय एक विचित्र नम्रता थी, जो आशा ने कभी ने देखी थी। बातों से भी निराशा टपकती थी। अक्खड़पन या क्रोध की गंध भी न थी। आशा का ऐसा मालुम हुआ कि उनकी आंखो में आंसू भरे हुए है।

विपिन चारपाई पर बैठते हुए बोले—मेरी दवा अब मौत करेगी। मै तुम्हें जलाने के लिए नहीं कहता। ईश्वर जानता है, मैं तुम्हे चोट नहीं पहुंचाना चाहता। मै अब ज्यादा दिनों तक न जिऊंगा। मुझे किसी भयंकर रोग के लक्षण दिखाई दे रहे है। डाक्टर नें भी वही कहा है। मुझे इसका खेद है कि मेरे हाथों तुम्हे कष्ट पहुंचा पर क्षमा करना। कभी-कभी बैठे-बैठे मेरा दिल डूब दिल डूब जाता है, मूर्छा-सी आ जाती है।

यह कहतें-कहते एकाएक वह काँप उठे। सारी देह में सनसनी सी दौड़ गयी। मूर्छित हो कर चारपाई पर गिर पड़े और हाथ-पैर पटकने लगे।

मुँह से फिचकुर निकलने लगा। सारी देह पसीने से तर हो गयी।

आशा का सारा रोग हवा हो गया। वह महीनों से बिस्तर न छोड़ सकी थी। पर इस समय उसके शिथिल अंगो में विचित्र स्फूर्ति दौड़ गयी। उसने तेजी से उठ कर विपिन को अच्छी तरह लेटा दिया और उनके मुख पर पानी के छींटे देने लगी। महरी भी दौड़ी आयी और पंखा झलने लगी। पर भी विपिन ने आंखें न खोलीं। संध्या होते-होते उनका मुंह टेढ़ा हो गया और बायां अंग शून्य पड़ गया। हिलाना तो दूर रहा, मूंह से बात निकालना भी मुश्किल हो गया। यह मूर्छा न थी, फालिज था।

5

फालिज के भयंकर रोग में रोगी की सेवा करना आसान काम नहीं है। उस पर आशा महीनों से बीमार थी। लेकिन उस रोग के सामने वह पना रोग भूल गई। 15 दिनों तक विपिन की हालत बहुत नाजुक रही। आशा दिन-के-दिन और रात-की-रात उनके पास बैठी रहती। उनके लिए पथ्य बनाना, उन्हें गोद में सम्भाल कर दवा पिलाना, उनके जरा-जरा से इशारों को समझाना उसी जैसी धैर्यशाली स्त्री का काम था। अपना सिर दर्द से फटा करता, ज्वर से देह तपा करती, पर इसकी उसे जरा भी परवाह न थी।

१५ दिनों बाद विपिन की हालत कुछ संभली। उनका दाहिना पैर तो लुंज पड़ गया था, पर तोतली भाषा में कुछ बोलने लगे थे। सबसे बुरी गत उनके सुन्दर मुख की हुई थी। वह इतना टेढ़ा हो गया था जैसे कोई रबर के खिलौने को खींच कर बढ़ा दें। बैटरी की मदद से जरा देर के लिए बैठे या खड़े तो हो जाते थे; लेकिन चलने–फिरने की ताकत न थी।

एक दिनों लेटे–लेटे उन्हे क्या ख्याल आया। आईना उठा कर अपना मुंह देखने लगे। ऐसा कुरुप आदमी उन्होने कभी न देखा था। आहिस्ता से बोले––आशा, ईश्वर ने मुझे गरुर की सजा दे दी। वास्तव में मुझे यह उसी बुराई का

बदला मिला है, जो मैने तुम्हारे साथ की। अब तुम अगर मेरा मुँह देखकर घृणा से मुँह फेर लो तो मुझ से उस दुर्व्यवहार का बदला लो, जो मैने, तुम्हारे साथ किए है।

आशा ने पति की ओर कोमल भाव से देखकर कहा––मै तो आपको अब भी उसी निगाह से देखती हूँ। मुझे तो आप में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता।

6

विपिन––वाह, बन्दर का–सा मुंह हो गया है, तुम कहती हो कि कोई अन्तर ही नहीं। मैं तो अब कभी बाहर न निकलूंगा। ईश्वर ने मुझे सचमुच दंड दिया। बहुत यत्न किए गए पर विपिन का मुंह सीधा न हुआ। मुख्य का बायां भाग इतना टेढ़ा हो गया था कि चेहरा देखकर डर मालूम होता था। हां, पैरों में इतनी शक्ति आ गई कि अब वह चलने–फिरने लगे। आशा ने पति की बीमारी में देवी की मनौती की थी। आज उसी की पुजा का उत्सव था। मुहल्ले की स्त्रियां बनाव–सिंगार किये जमा थीं। गाना–बजाना हो रहा था।

एक सहेली ने पुछा––क्यों आशा, अब तो तुम्हें उनका मुंह जरा भी अच्छा न लगता होगा।

आशा ने गम्भीर होकर कहा––मुझे तो पहले से कहीं मुंह जरा भी अच्छा न लगता होगा।

'चलों, बातें बनाती हो।'

'नही बहन, सच कहती हूँ; रूप के बदले मुझे उनकी आत्मा मिल गई जो रूप से कहीं बढ़कर है।'

विपिन कमरे में बैठे हुए थे। कई मित्र जमा थे। ताश हो रहा था।

कमरे में एक खिड़की थी जो आंगन में खुलती थी। इस वक्त वह बन्द थी। एक मित्र ने उसे चुपके से खोल दिया। एक मित्र ने उसे चुपके दिया और शीशे से झांक कर विपिन से कहा-- आज तो तुम्हारे यहां परियों का अच्छा जमघट है।

विपिन--बन्दा कर दो।

'अजी जरा देखो तो: कैसी-कैसी सूरतें है ! तुम्हे इन सबों में कौन सबसे अच्छी मालूम होती है?

विपिन ने उड़ती हुई नजरों से देखकर कहा--मुझे तो वहीं सबसे अच्छी मालूम होती है जो थाल में फूल रख रही है।

'वाह री आपकी निगाह ! क्या सूरत के साथ तुम्हारी निगाह भी बिगड़ गई? मुझे तो वह सबसे बदसूरत मालूम होती है।'

'इसलिए कि तुम उसकी सूरत देखते हो और मै उसकी आत्मा देखता हूं।'

'अच्छा, यही मिसेज विपिन हैं?'

'जी हां, यह वही देवी है।

***

उद्धार

हिंदू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी दूषित, इतनी चिंताजनक, इतनी भयंकर हो गयी है कि कुछ समझ में नहीं आता, उसका सुधार क्योंकर हो। बिरलें ही ऐसे माता-पिता होंगे जिनके सात पुत्रों के बाद एक भी कन्या उत्पन्न हो जाय तो वह सहर्ष उसका स्वागत करें। कन्या का जन्म होते ही उसके विवाह की चिंता सिर पर सवार हो जाती है और आदमी उसी में डुबकियाँ खाने लगता है। अवस्था इतनी निराशमय और भयानक हो गई है कि ऐसे माता-पिताओं की कमी नहीं है जो कन्या की मृत्यु पर ह्रदय से प्रसन्न होते है, मानों सिर से बाधा टली। इसका कारण केवल यही है कि देहज की दर, दिन दूनी रात चौगुनी, पावस-काल के जल-गुजरे कि एक या दो हजारों तक नौबत पहुंच गई है। अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि एक या दो हजार रुपये दहेज केवल बड़े घरों की बात थी, छोटी-छोटी शादियों पाँच सौ से एक हजार तक तय हो जाती थीं; अब मामूली-मामूली विवाह भी तीन-चार हजार के नीचे तय नहीं होते । खर्च का तो यह हाल है और शिक्षित समाज की निर्धनता और दरिद्रता दिन बढ़ती जाती है। इसका अन्त क्या होगा ईश्वर ही जाने। बेटे एक दर्जन भी हों तो माता-पिता का चिंता नहीं होती। वह अपने ऊपर उनके विवाह-भार का अनिवार्य नहीं समझता, यह उसके लिए 'कम्पलसरी' विषय नहीं, 'आप्शनल' विषय है। होगा तों कर देगें; नही कह देंगे--बेटा, खाओं कमाओं, कमाई हो तो विवाह कर लेना। बेटों की कुचरित्रता कलंक की बात नहीं समझी जाती; लेकिन कन्या का विवाह तो करना ही पड़ेगा, उससे भागकर कहां जायेगें? अगर विवाह में विलम्ब हुआ और कन्या के पांव कहीं ऊँचे नीचे पड़ गये तो फिर कुटुम्ब की नाक कट गयी; वह पतित हो गया, टाट बाहर कर दिया गया। अगर वह इस दुर्घटना को सफलता के साथ गुप्त रख सका तब तो कोई बात नहीं; उसकों कलंकित करने का किसी का साहस नहीं; लेकिन अभाग्यवश यदि वह इसे छिपा न सका, भंडाफोड़ हो गया तो फिर माता-पिता के लिए, भाई-बंधुओं के लिए संसार में मुंह दिखाने को नहीं रहता। कोई अपमान इससे दुस्सह, कोई विपत्ति इससे भीषण नहीं। किसी भी व्याधि

की इससे भयंकर कल्पना नहीं की जा सकती। लुत्फ तो यह है कि जो लोग बेटियों के विवाह की कठिनाइयों को भोग चुके होते है वहीं अपने बेटों के विवाह के अवसर पर बिलकुल भूल जाते है कि हमें कितनी ठोकरें खानी पड़ी थीं, जरा भी सहानुभूति नही प्रकट करतें, बल्कि कन्या के विवाह में जो तावान उठाया था उसे चक्र-वृद्धि ब्याज के साथ बेटे के विवाह में वसूल करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं। कितने ही माता-पिता इसी चिंता में ग्रहण करलेता है, कोई बूढ़े के गले कन्या का मढ़ कर अपना गला छुड़ाता है, पात्र-कुपात्र के विचार करने का मौका कहां, ठेलमठेल है।

मुंशी गुलजारीलाल ऐसे ही हतभागे पिताओं में थे। यों उनकी स्थिति बुरी न थी। दो-ढ़ाई सौ रुपये महीने वकालत से पीट लेते थे, पर खानदानी आदमी थे, उदार हृदय, बहुत किफायत करने पर भी माकूल बचत न हो सकती थी। संबंधियों का आदर-सत्कार न करें तो नहीं बनता, मित्रों की खातिरदारी न करें तो नही बनता। फिर ईश्वर के दिये हुए दो पुत्र थे, उनका पालन-पोषण, शिक्षण का भार था, क्या करते ! पहली कन्या का विवाह टेढ़ी खीर हो रहा था। यह आवश्यक था कि विवाह अच्छे घराने में हो, अन्यथा लोग हंसेगे और अच्छे घराने के लिए कम-से-कम पांच हजार का तखमीना था। उधर पुत्री सयानी होती जाती थी। वह अनाज जो लड़के खाते थे, वह भी खाती थी; लेकिन लड़कों को देखो तो जैसे सूखों का रोग लगा हो और लड़की शुक्ल पक्ष का चांद हो रही थी। बहुत दौड़-धूप करने पर बचारे को एक लड़का मिला। बाप आबकारी के विभाग में ४०० रु० का नौकर था, लड़का सुशिक्षित। स्त्री से आकार बोले, लड़का तो मिला और घरबार-एक भी काटने योग्य नहीं; पर कठिनाई यही है कि लड़का कहता है, मैं अपना विवाह न करुंगा। बाप ने समझाया, मैने कितना समझाया, औरों ने समझाया, पर वह टस से मस नहीं होता। कहता है, मै कभी विवाह न करुंगा। समझ में नहीं आता, विवाह से क्यों इतनी घृणा करता है। कोई कारण नहीं बतलाता, बस यही कहता है, मेरी इच्छा। मां बाप का एकलौता लड़का है। उनकी परम इच्छा है कि इसका विवाह हो जाय, पर करें क्या? यों उन्होने फलदान तो रख लिया है पर मुझसे कह दिया है कि

लड़का स्वभाव का हठीला है, अगर न मानेगा तो फलदान आपको लौटा दिया जायेगा।

स्त्री ने कहा--तुमने लड़के को एकांत में बुलावकर पूछा नहीं?

गुलजारीलाल--बुलाया था। बैठा रोता रहा, फिर उठकर चला गया। तुमसे क्या कहूं, उसके पैरों पर गिर पड़ा; लेकिन बिना कुछ कहे उठाकर चला गया।

स्त्री--देखो, इस लड़की के पीछे क्या-क्या झेलना पड़ता है?

गुलजारीलाल--कुछ नहीं, आजकल के लौंडे सैलानी होते हैं। अंगरेजी पुस्तकों में पढ़ते है कि विलायत में कितने ही लोग अविवाहित रहना ही पसंद करते है। बस यही सनक सवार हो जाती है कि निर्द्वद्व रहने में ही जीवन की सुख और शांति है। जितनी मुसीबतें है वह सब विवाह ही में है। मैं भी कालेज में था तब सोचा करता था कि अकेला रहूंगा और मजे से सैर-सपाटा करुंगा।

स्त्री--है तो वास्तव में बात यही। विवाह ही तो सारी मुसीबतों की जड़ है। तुमने विवाह न किया होता तो क्यों ये चिंताएं होतीं ? मैं भी क्वांरी रहती तो चैन करती।

2

इसके एक महीना बाद मुंशी गुलजारीलाल के पास वर ने यह पत्र लिखा--

'पूज्यवर,

सादर प्रणाम।

मैं आज बहुत असमंजस में पड़कर यह पत्र लिखने का साहस कर रहा हूं। इस धृष्टता को क्षमा कीजिएगा।

आपके जाने के बाद से मेरे पिताजी और माताजी दोनों मुझ पर विवाह करने के लिए नाना प्रकार से दबाव डाल रहे है। माताजी रोती है, पिताजी नाराज होते हैं। वह समझते है कि मैं अपनी जिद के कारण विवाह से भागता हूं। कदाचिता उन्हे यह भी सन्देह हो रहा है कि मेरा चरित्र भ्रष्ट हो गया है। मैं वास्तविक कारण बताते हुए डारता हूं कि इन लोगों को दु:ख होगा और आश्चर्य नहीं कि शोक में उनके प्राणों पर ही बन जाय। इसलिए अब तक मैने जो बात गुप्त रखी थी, वह आज विवश होकर आपसे प्रकट करता हूं और आपसे साग्रह निवेदन करता हूं कि आप इसे गोपनीय समझिएगा और किसी दशा में भी उन लोगों के कानों में इसकी भनक न पड़ने दीजिएगा। जो होना है वह तो होगा है, पहले ही से क्यों उन्हे शोक में डुबाऊं। मुझे ५-६ महीनों से यह अनुभव हो रहा है कि मैं क्षय रोग से ग्रसित हूं। उसके सभी लक्षण प्रकट होते जाते है। डाक्टरों की भी यही राय है। यहां सबसे अनुभवी जो दो डाक्टर हैं, उन दोनों ही से मैने अपनी आरोग्य-परीक्षा करायी और दोनो ही ने स्पष्ट कहा कि तुम्हे सिल है। अगर माता-पिता से यह कह दूं तो वह रो-रो कर मर जायेगें। जब यह निश्चय है कि मैं संसार में थोड़े ही दिनों का मेहमान हूं तो मेरे लिए विवाह की कल्पना करना भी पाप है। संभव है कि मैं विशेष प्रयत्न करके साल दो साल जीवित रहूं, पर वह दशा और भी भयंकर होगी, क्योकि अगर कोई संतान हुई तो वह भी मेरे संस्कार से अकाल मृत्यु पायेगी और कदाचित् स्त्री को भी इसी रोग-राक्षस का भक्ष्य बनना पड़े। मेरे अविवाहित रहने से जो बीतेगी, मुझ पर बीतेगी। विवाहित हो जाने से मेरे साथ और कई जीवों का नाश हो जायगा। इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि मुझे इस बन्धन में डालने के लिए आग्रह न कीजिए, अन्यथा आपको पछताना पड़ेगा।

सेवक
'हजारीलाल।'

पत्र पढ़कर गुलजारीलाल ने स्त्री की ओर देखा और बोले--इस पत्र के विषय में तुम्हारा क्या विचार हैं।

स्त्री--मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि उसने बहाना रचा है।

गुलजारीलाल--बस-बस, ठीक यही मेरा भी विचार है। उसने समझा है कि बीमारी का बहाना कर दूंगा तो आप ही हट जायेंगे। असल में बीमारी कुछ नहीं। मैने तो देखा ही था, चेहरा चमक रहा था। बीमार का मुंह छिपा नहीं रहता।

स्त्री--राम नाम ले के विवाह करो, कोई किसी का भाग्य थोड़े ही पढ़े बैठा है।

गुलजारीलाल--यही तो मै सोच रहा हूं।

स्त्री--न हो किसी डाक्टर से लड़के को दिखाओं । कहीं सचमुच यह बीमारी हो तो बेचारी अम्बा कहीं की न रहे।

गुलजारीलाल-तुम भी पागल हो क्या? सब हीले-हवाले हैं। इन छोकरों के दिल का हाल मैं खुब जानता हूं। सोचता होगा अभी सैर-सपाटे कर रहा हूं, विवाह हो जायगा तो यह गुलछर्रे कैसे उड़ेगे!

स्त्री--तो शुभ मुहूर्त देखकर लग्न भिजवाने की तैयारी करो।

3

हजारीलाल बड़े धर्म-संदेह में था। उसके पैरों में जबरदस्ती विवाह की बेड़ी डाली जा रही थी और वह कुछ न कर सकता था। उसने ससुर का अपना कच्चा चिट्ठा कह सुनाया; मगर किसी ने उसकी बालों पर विश्वास न किया। माँ-बाप से अपनी बीमारी का हाल कहने का उसे साहस न होता था। न जाने उनके दिल पर क्या गुजरे, न जाने क्या कर बैठें? कभी सोचता किसी डाक्टर की शहदत लेकर ससूर के पास भेज दूं, मगर फिर ध्यान आता, यदि उन लोगों को उस पर भी विश्वास न आया, तो? आजकल डाक्टरी से सनद ले लेना कौन-सा

मुश्किल काम है। सोचेंगे, किसी डाक्टर को कुछ दे दिलाकर लिखा लिया होगा। शादी के लिए तो इतना आग्रह हो रहा था, उधर डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया था कि अगर तुमने शादी की तो तुम्हारा जीवन-सुत्र और भी निर्बल हो जाएगा। महीनों की जगह दिनों में वारा-न्यारा हो जाने की सम्भावाना है।

लग्न आ चुकी थी। विवाह की तैयारियां हो रही थीं, मेहमान आते-जाते थे और हजारीलाल घर से भागा-भागा फिरता था। कहां चला जाऊं? विवाह की कल्पना ही से उसके प्राण सूख जाते थे। आह! उस अबला की क्या गति होगी ? जब उसे यह बात मालूम होगी तो वह मुझे अपने मन में क्या कहेगी? कौन इस पाप का प्रायश्चित करेगा ? नहीं, उस अबला पर घोर अत्याचार न करुंगा, उसे वैधव्य की आग में न जलाऊंगा। मेरी जिन्दगी ही क्या, आज न मरा कल मरुंगा, कल नहीं तो परसों, तो क्यों न आज ही मर जाऊं। आज ही जीवन का और उसके साथ सारी चिंताओं को, सारी विपत्तियों का अन्त कर दूं। पिता जी रोयेंगे, अम्मां प्राण त्याग देंगी; लेकिन एक बालिका का जीवन तो सफल हो जाएगा, मेरे बाद कोई अभागा अनाथ तो न रोयेगा।

क्यों न चलकर पिताजी से कह दूं? वह एक-दो दिन दु:खी रहेंगे, अम्मां जी दो-एक रोज शोक से निराहार रह जायेगीं, कोई चिंता नहीं। अगर माता-पिता के इतने कष्ट से एक युवती की प्राण-रक्षा हो जाए तो क्या छोटी बात है?

यह सोचकर वह धीरे से उठा और आकर पिता के सामने खड़ा हो गया।

रात के दस बज गये थे। बाबू दरबारीलाल चारपाई पर लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। आज उन्हे सारा दिन दौड़ते गुजरा था। शामियाना तय किया; बाजे वालों को बयाना दिया; आतिशबाजी, फुलवारी आदि का प्रबन्ध किया। घंटो ब्राहमणों के साथ सिर मारते रहे, इस वक्त जरा कमर सीधी कर रहें थे कि सहसा हजारीलाल को सामने देखकर चौंक पड़ें। उसका उतरा हुआ चेहरा सजल आंखे और कुंठित मुख देखा तो कुछ चिंतित होकर बोले--क्यों लालू, तबीयत तो अच्छी है न? कुछ उदास मालूम होते हो।

हजारीलाल--मै आपसे कुछ कहना चाहता हूं; पर भय होता है कि कहीं आप अप्रसन्न न हों।

दरबारीलाल--समझ गया, वही पुरानी बात है न ? उसके सिवा कोई दूसरी बात हो शौक से कहो।

हजारीलाल--खेद है कि मैं उसी विषय में कुछ कहना चाहता हूं।

दरबारीलाल--यही कहना चाहता हो न मुझे इस बन्धन में न डालिए, मैं इसके अयोग्य हूं, मै यह भार सह नहीं सकता, बेड़ी मेरी गर्दन को तोड़ देगी, आदि या और कोई नई बात ?

हजारीलाल--जी नहीं नई बात है। मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए सब प्रकार तैयार हूं; पर एक ऐसी बात है, जिसे मैने अब तक छिपाया था, उसे भी प्रकट कर देना चाहता हूं। इसके बाद आप जो कुछ निश्चय करेंगे उसे मैं शिरोधार्य करुंगा।

हजारीलाल ने बड़े विनीत शब्दों में अपना आशय कहा, डाक्टरों की राय भी बयान की और अन्त में बोलें--ऐसी दशा में मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे विवाह करने के लिए बाध्य न करेंगें। दरबारीलाल ने पुत्र के मुख की और गौर से देखा, कहे जर्दी का नाम न था, इस कथन पर विश्वास न आया; पर अपना अविश्वास छिपाने और अपना हार्दिक शोक प्रकट करने के लिए वह कई मिनट तक गहरी चिंता में मग्न रहे। इसके बाद पीड़ित कंठ से बोले--बेटा, इस इशा में तो विवाह करना और भी आवश्यक है। ईश्वर न करें कि हम वह बुरा दिन देखने के लिए जीते रहे, पर विवाह हो जाने से तुम्हारी कोई निशानी तो रह जाएगी। ईश्वर ने कोई संतान दे दी तो वही हमारे बुढ़ापे की लाठी होगी, उसी का मुंह देखरेख कर दिल को समझायेंगे, जीवन का कुछ आधार तो रहेगा। फिर आगे

क्या होगा, यह कौन कह सकता है? डाक्टर किसी की कर्म-रेखा तो नहीं पढ़ते, ईश्वर की लीला अपरम्पार है, डाक्टर उसे नहीं समझ सकते । तुम निश्चिंत होकर बैठों, हम जो कुछ करते है, करने दो। भगवान चाहेंगे तो सब कल्याण ही होगा।

हजारीलाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। आंखे डबडबा आयीं, कंठावरोध के कारण मुंह तक न खोल सका। चुपके से आकर अपने कमरे मे लेट रहा।

तीन दिन और गुजर गये, पर हजारीलाल कुछ निश्चय न कर सका। विवाह की तैयारियों में रखे जा चुके थे। मंत्रेयी की पूजा हो चूकी थी और द्वार पर बाजों का शोर मचा हुआ था। मुहल्ले के लड़के जमा होकर बाजा सुनते थे और उल्लास से इधर-उधर दौड़ते थे।

संध्या हो गयी थी। बरात आज रात की गाड़ी से जाने वाली थी। बरातियों ने अपने वस्त्राभूष्ण पहनने शुरु किये। कोई नाई से बाल बनवाता था और चाहता था कि खत ऐसा साफ हो जाय मानों वहां बाल कभी थे ही नहीं, बुढ़े अपने पके बाल को उखड़वा कर जवान बनने की चेष्टा कर रहे थे। तेल, साबुन, उबटन की लूट मची हुई थी और हजारीलाल बगीचे मे एक वृक्ष के नीचे उदास बैठा हुआ सोच रहा था, क्या करुं?

अन्तिम निश्चय की घड़ी सिर पर खड़ी थी। अब एक क्षण भी विल्म्ब करने का मौका न था। अपनी वेदना किससे कहें, कोई सुनने वाला न था।

उसने सोचा हमारे माता-पिता कितने अदूरदर्शी है, अपनी उमंग में इन्हे इतना भी नही सूझता कि वधु पर क्या गुजरेगी। वधू के माता-पिता कितने अदूरदर्शी है, अपनी उमंग मे भी इतने अन्धे हो रहे है कि देखकर भी नहीं देखते, जान कर नहीं जानते।

क्या यह विवाह है? कदापि नहीं। यह तो लड़की का कुएं में डालना है, भाड़ मे झोंकना है, कुंद छुरे से रेतना है। कोई यातना इतनी दुस्सह, कर अपनी पुत्री का वैधव्य के अग्नि-कुंड में डाल देते है। यह माता-पिता है? कदापि नहीं। यह लड़की के शत्रु है, कसाई है, बधिक हैं, हत्यारे है। क्या इनके लिए कोई दण्ड नहीं ? जो जानबूझ कर अपनी प्रिय संतान के खून से अपने हाथ रंगते है, उसके लिए कोई दंड नहीं? समाज भी उन्हे दंड नहीं देता, कोई कुछ नहीं कहता। हाय !

यह सोचकर हजारीलाल उठा और एक ओर चुपचाप चल दिया। उसके मुख पर तेज छाया हुआ था। उसने आत्म-बलिदान से इस कष्ट का निवारण करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। उसे मृत्यु का लेशमात्र भी भय न था। वह उस दशा का पहुंच गया था जब सारी आशाएं मृत्यु पर ही अवलम्बित हो जाती है।

उस दिन से फिर किसी ने हजारीलाल की सूरत नहीं देखी। मालूम नहीं जमीन खा गई या आसमान। नादियों मे जाल डाले गए, कुओं में बांस पड़ गए, पुलिस में हुलिया गया, समाचार-पत्रों मे विज्ञप्ति निकाली गई, पर कहीं पता न चला ।

कई हफ्तो के बाद, छावनी रेलवे से एक मील पश्चिम की ओर सड़क पर कुछ हड्डियाँ मिलीं। लोगो को अनुमान हुआ कि हजारीलाल ने गाड़ी के नीचे दबकर जान दी, पर निश्चित रूप से कुछ न मालुम हुआ।

भादों का महीना था और तीज का दिन था। घरों में सफाई हो रही थी। सौभाग्यवती रमणियां सोलहो श्रृंगार किए गंगा-स्नान करने जा रही थीं। अम्बा स्नान करके लौट आयी थी और तुलसी के कच्चे चबूतरे के सामने खड़ी वंदना कर रही थी। पतिगृह में उसे यह पहली ही तीज थी, बड़ी उमंगो से व्रत रखा था। सहसा उसके पति ने अन्दर आ कर उसे सहास नेत्रों से देखा और बोला--मुंशी दरबारी लाल तुम्हारे कौन होते है, यह उनके यहां से तुम्हारे लिए तीज पठौनी आयी है। अभी डाकिया दे गया है।

यह कहकर उसने एक पार्सल चारपाई पर रख दिया। दरबारीलाल का नाम सुनते ही अम्बा की आंखे सजल हो गयीं। वह लपकी हुयी आयी और पार्सल स्मृतियां जीवित हो गयीं, हृदय में हजारीलाल के प्रति श्रद्धा का एक उद्‌गार-सा उठ पड़ा। आह! यह उसी देवात्मा के आत्मबलिदान का पुनीत फल है कि मुझे यह दिन देखना नसीब हुआ। ईश्वर उन्हे सद्‌गति दें। वह आदमी नहीं, देवता थे, जिसने अपने कल्याण के निमित्त अपने प्राण तक समर्पण कर दिए।

पति ने पूछा--दरबारी लाल तुम्हारी चचा हैं।

अम्बा--हाँ।

पति--इस पत्र में हजारीलाल का नाम लिखा है, यह कौन है?

अम्बा--यह मुंशी दरबारी लाल के बेटे हैं।

पति--तुम्हारे चचरे भाई?

अम्बा--नहीं, मेरे परम दयालु उद्धारक, जीवनदाता, मुझे अथाह जल में डुबने से बचाने वाले, मुझे सौभाग्य का वरदान देने वाले।

पति ने इस भाव कहा मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो--आह! मैं समझ गया। वास्तव में वह मनुष्य नहीं देवता थे।

***

निर्वासन

परशुराम –वहीं—वहीं दालान में ठहरो!

मर्यादा—क्यों, क्या मुझमें कुछ छूत लग गई!

परशुराम—पहले यह बताओं तुम इतने दिनों से कहां रहीं, किसके साथ रहीं, किस तरह रहीं और फिर यहां किसके साथ आयीं? तब, तब विचार...देखी जाएगी।

मर्यादा—क्या इन बातों को पूछने का यही वक्त है; फिर अवसर न मिलेगा?

परशुराम—हां, यही बात है। तुम स्नान करके नदी से तो मेरे साथ ही निकली थीं। मेरे पीछे-पीछे कुछ देर तक आयीं भी; मै पीछे फिर-फिर कर तुम्हें देखता जाता था,फिर एकाएक तुम कहां गायब हो गयीं?

मर्यादा – तुमने देखा नहीं, नागा साधुओं का एक दल सामने से आ गया। सब आदमी इधर-उधर दौड़ने लगे। मै भी धक्के में पड़कर जाने किधर चली गई। जरा भीड़ कम हुई तो तुम्हें ढूंढ़ने लगी। बासू का नाम ले-ले कर पुकारने लगी, पर तुम न दिखाई दिये।

परशुराम – अच्छा तब?

मर्यादा—तब मै एक किनारे बैठकर रोने लगी, कुछ सूझ ही न पड़ता कि कहां जाऊं, किससे कहूं, आदमियों से डर लगता था। संध्या तक वहीं बैठी रोती रही।

परशुराम—इतना तूल क्यों देती हो? वहां से फिर कहां गयीं?

मर्यादा—संध्या को एक युवक ने आ कर मुझसे पूछा, तुम्हारेक घर के लोग कहीं खो तो नहीं गए है? मैने कहा—हां। तब उसने तुम्हारा नाम, पता, ठिकाना पूछा।

उसने सब एक किताब पर लिख लिया और मुझसे बोला—मेरे साथ आओ, मै तुम्हें तुम्हारे घर भेज दूंगा।

परशुराम—वह आदमी कौन था?

मर्यादा—वहां की सेवा-समिति का स्वयंसेवक था।

परशुराम –तो तुम उसके साथ हो लीं?

मर्यादा—और क्या करती? वह मुझे समिति के कार्यलय में ले गया। वहां एक शामियाने में एक लम्बी दाढ़ीवाला मनुष्य बैठा हुआ कुछ लिख रहा था। वही उन सेवकों का अध्यक्ष था। और भी कितने ही सेवक वहां खड़े थे। उसने मेरा पता-ठिकाना रजिस्टर में लिखकर मुझे एक अलग शामियाने में भेज दिया, जहां और भी कितनी खोयी हुई स्त्रियों बैठी हुई थीं।

परशुराम—तुमने उसी वक्त अध्यक्ष से क्यों न कहा कि मुझे पहुंचा दीजिए?

मर्यादा—मैने एक बार नहीं सैकड़ो बार कहा; लेकिन वह यह कहते रहे, जब तक मेला न खत्म हो जाए और सब खोयी हुई स्त्रियां एकत्र न हो जाएं, मैं भेजने का प्रबन्ध नहीं कर सकता। मेरे पास न इतने आदमी हैं, न इतना धन?

परशुराम—धन की तुम्हे क्या कमी थी, कोई एक सोने की चीज बेच देती तो काफी रूपए मिल जाते।

मर्यादा—आदमी तो नहीं थे।

परशुराम—तुमने यह कहा था कि खर्च की कुछ चिन्ता न कीजिए, मैं अपने गहने बेचकर अदा कर दूंगी?

मर्यादा—सब स्त्रियां कहने लगीं, घबरायी क्यों जाती हो? यहां किस बात का डर है। हम सभी जल्द अपने घर पहुंचना चाहती है; मगर क्या करें? तब मैं भी चुप हो रही।

परशुराम – और सब स्त्रियां कुएं में गिर पड़ती तो तुम भी गिर पड़ती?

मर्यादा—जानती तो थी कि यह लोग धर्म के नाते मेरी रक्षा कर रहे हैं, कुछ मेरे नौकरी या मजूर नहीं हैं, फिर आग्रह किस मुंह से करती? यह बात भी है कि बहुत-सी स्त्रियों को वहां देखकर मुझे कुछ तसल्ली हो गईग् परशुराम—हां, इससे बढ़कर तस्कीन की और क्या बात हो सकती थी? अच्छा, वहां के दिन तस्कीन का आनन्द उठाती रही? मेला तो दूसरे ही दिन उठ गया होगा?

मर्यादा—रात- भर मैं स्त्रियों के साथ उसी शामियाने में रही।

परशुराम—अच्छा, तुमने मुझे तार क्यों न दिलवा दिया?

मर्यादा—मैंने समझा, जब यह लोग पहुंचाने की कहते ही हैं तो तार क्यों दूं?

परशुराम—खैर, रात को तुम वहीं रही। युवक बार-बार भीतर आते रहे होंगे?

मर्यादा—केवल एक बार एक सेवक भोजन के लिए पूछने आयास था, जब हम सबों ने खाने से इन्कार कर दिया तो वह चला गया और फिर कोई न आया। मैं रात-भर जगती रही।

परशुराम—यह मैं कभी न मानूंगा कि इतने युवक वहां थे और कोई अन्दर न गया होगा। समिति के युवक आकाश के देवता नहीं होत। खैर, वह दाढ़ी वाला अध्यक्ष तो जरूर ही देखभाल करने गया होगा?

मर्यादा—हां, वह आते थे। पर द्वार पर से पूछ-पूछ कर लौट जाते थे। हां, जब एक महिला के पेट में दर्द होने लगा था तो दो-तीन बार दवाएं पिलाने आए थे।

परशुराम—निकली न वही बात! मै इन धूर्तों की नस-नस पहचानता हूं। विशेषकर तिलक-मालाधारी दढ़ियलों को मैं गुरू घंटाल ही समझता हूं। तो वे महाशय कई बार दवाई देने गये? क्यों तुम्हारे पेट में तो दर्द नहीं होने लगा था?

मर्यादा—तुम एक साधु पुरूष पर आक्षेप कर रहे हो। वह बेचारे एक तो मेरे बाप के बराबर थे, दूसरे आंखे नीची किए रहने के सिवाय कभी किसी पर सीधी निगाह नहीं करते थे।

परशुराम—हां, वहां सब देवता ही देवता जमा थे। खैर, तुम रात-भर वहां रहीं। दूसरे दिन क्या हुआ?

मर्यादा—दूसरे दिन भी वहीं रही। एक स्वयंसेवक हम सब स्त्रियों को साथ में लेकर मुख्य-मुख्य पवित्र स्थानो का दर्शन कराने गया। दो पहर को लौट कर सबों ने भोजन किया।

परशुराम—तो वहां तुमने सैर-सपाटा भी खूब किया, कोई कष्ट न होने पाया। भोजन के बाद गाना-बजाना हुआ होगा?

मर्यादा—गाना बजाना तो नहीं, हां, सब अपना-अपना दुखड़ा रोती रहीं, शाम तक मेला उठ गया तो दो सेवक हम लोगों को ले कर स्टेशन पर आए।

परशुराम—मगर तुम तो आज सातवें दिन आ रही हो और वह भी अकेली?

मर्यादा—स्टेशन पर एक दुर्घटना हो गयी।

परशुराम—हां, यह तो मैं समझ ही रहा था। क्या दुर्घटना हुई?

मर्यादा—जब सेवक टिकट लेने जा रहा था, तो एक आदमी ने आ कर उससे कहा—यहां गोपीनाथ के धर्मशाला में एक आदमी ठहरे हुए हैं, उनकी स्त्री खो गयी है, उनका भला-सास नाम है, गोरे-गोरे लम्बे-से खूबसूरत आदमी हैं, लखनऊ मकान है, झवाई टोले में। तुम्हारा हुलिया उसने ऐसा ठीकबयान किया कि मुझे उसस पर विश्वास आ गया। मैं सामने आकर बोली, तुम बाबूजी को जानते हो? वह हंसकर बोला, जानता नहीं हूं तो तुम्हें तलाश क्यो करता फिरता हूं। तुम्हारा बच्चा रो-रो कर हलकान हो रहा है। सब औरतें कहने लगीं, चली जाओं, तुम्हारे स्वामीजी घबरा रहे होंगे। स्वयंसेवक ने उससे दो-चार बातें पूछ कर मुझे उसके साथ कर दिया। मुझे क्या मालूम था कि मैं किसी नर-पिशाच के हाथों पड़ी जाती हूं। दिल मैं खुशी थी किअब बासू को देखूंगी तुम्हारे दर्शन करूंगी। शायद इसी उत्सुकता ने मुझे असावधान कर दिया।

परशुराम—तो तुम उस आदमी के साथ चल दी? वह कौन था?

मर्यादा—क्या बतलाऊं कौन था? मैं तो समझती हूं, कोई दलाल था?

परशुराम—तुम्हे यह न सूझी कि उससे कहतीं, जा कर बाबू जी को भेज दो?

मर्यादा—अदिन आते हैं तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

परशुराम—कोई आ रहा है।

मर्यादा—मैं गुसलखाने में छिपी जाती हूं।

परशुराम –आओ भाभी, क्या अभी सोयी नहीं, दस तो बज गए होंगे।

भाभी—वासुदेव को देखने को जी चाहता था भैया, क्या सो गया?

परशुराम—हां, वह तो अभी रोते-रोते सो गया।

भाभी—कुछ मर्यादा का पता मिला? अब पता मिले तो भी तुम्हारे किस काम की। घर से निकली स्त्रियां थान से छूटी हुई घोड़ी हैं। जिसका कुछ भरोसा नहीं।

परशुराम—कहां से कहां लेकर मैं उसे नहाने लगा।

भाभी—होनहार हैं, भैया होनहार। अच्छा, तो मै जाती हूं।

मर्यादा—(बाहर आकर) होनहार नहीं हूं, तुम्हारी चाल है। वासुदेव को प्यार करने के बहाने तुम इस घर पर अधिकार जमाना चाहती हो।

परशुराम –बको मत! वह दलाल तुम्हें कहां ले गया।

मर्यादा—स्वामी, यह न पूछिए, मुझे कहते लज्ज आती है।

परशुराम—यहां आते तो और भी लज्ज आनी चाहिए थी।

मर्यादा—मै परमात्मा को साक्षी देती हूं, कि मैंने उसे अपना अंग भी स्पर्श नहीं करने दिया।

पराशुराम—उसका हुलिया बयान कर सकती हो।

मर्यादा—सांवला सा छोटे डील डौल काआदमी था।नीचा कुरता पहने हुए था।

परशुराम—गले में ताबीज भी थी?

मर्यादा—हां,थी तो।

परशुराम—वह धर्मशाले का मेहतर था।मैने उसे तुम्हारे गुम हो जाने की चर्चा की थी। वह उस दुष्ट ने उसका वह स्वांग रचा।

मर्यादा—मुझे तो वह कोई ब्रह्मण मालूम होता था।

परशुराम—नहीं मेहतर था। वह तुम्हें अपने घर ले गया?

मर्यादा—हां, उसने मुझे तांगे पर बैठाया और एक तंग गली में, एक छोटे- से मकान के अन्दर ले जाकर बोला, तुम यहीं बैठो, मुम्हारें बाबूजी यहीं आयेंगे। अब मुझे विदित हुआ कि मुझे धोखा दिया गया। रोने लगी। वह आदमी थोडी देर बाद चला गया और एक बुढिया आ कर मुझे भांति-भांति के प्रलोभन देने लगी। सारी रात रो-रोकर काटी दूसरे दिन दोनों फिर मुझे समझाने लगे कि रो-रो कर जान दे दोगी, मगर यहां कोई तुम्हारी मदद को न आयेगा। तुम्हाराएक घर डूट गया। हम तुम्हे उससे कहीं अच्छा घर देंगें जहां तुम सोने के कौर खाओगी और सोने से लद जाओगी। लब मैने देखा किक यहां से किसी तरह नहीं निकल सकती तो मैने कौशल करने का निश्चय किया।

परशुराम—खैर, सुन चुका। मैं तुम्हारा ही कहना मान लेता हूं कि तुमने अपने सतीत्व की रक्षा की, पर मेरा हृदय तुमसे घृणा करता है, तुम मेरे लिए फिर वह नहीं निकल सकती जो पहले थीं। इस घर में तुम्हारे लिए स्थान नहीं है।

मर्यादा—स्वामी जी, यह अन्याय न कीजिए, मैं आपकी वही स्त्री हूं जो पहले थी। सोचिए मेरी दशा क्या होगी?

परशुराम—मै यह सब सोच चुका और निश्चय कर चुका। आज छः दिन से यह सोच रहा हूं। तुम जानती हो कि मुझे समाज का भय नहीं। छूत-विचार को मैंने पहले ही तिलांजली दे दी, देवी-देवताओं को पहले ही विदा कर चुका:पर जिस स्त्री पर दूसरी निगाहें पड चुकी, जो एक सप्ताह तक न-जाने कहां और किस दशा में रही, उसे अंगीकार करना मेरे लिए असम्भव है। अगर अन्याय है तो ईश्वर की ओर से है, मेरा दोष नहीं।

मर्यादा—मेरी विवशमा पर आपको जरा भी दया नहीं आती?

परशुराम—जहां घृणा है, वहां दया कहां? मै अब भी तुम्हारा भरण-पोषण करने को तैयार हूं।जब तक जीऊगां, तुम्हें अन्न-वस्त्र का कष्ट न होगा पर तुम मेरी स्त्री नहीं हो सकतीं।

मर्यादा—मैं अपने पुत्र का मुह न देखूं अगर किसी ने स्पर्श भी किया हो।

परशुराम—तुम्हारा किसी अन्य पुरूष के साथ क्षण-भर भी एकान्त में रहना तुम्हारे पतिव्रत को नष्ट करने के लिए बहुत है। यह विचित्र बंधन है, रहे तो जन्म-जन्मान्तर तक रहे: टूटे तो क्षण-भर में टूट जाए। तुम्हीं बताओं, किसी मुसलमान ने जबरदस्ती मुझे अपना उच्छिट भोलन खिला दिया होता तो मुझे स्वीकार करतीं?

मर्यादा—वह.... वह.. तो दूसरी बात है।

परशुराम—नहीं, एक ही बात है। जहां भावों का संबंध है, वहां तर्क और न्याय से काम नहीं चलता। यहां तक अगर कोई कह दे कि तुम्हारें पानी को मेहतर ने छू निया है तब भी उसे ग्रहण करने से तुम्हें घृणा आयेगी। अपने ही दिन से सोचो कि तुम्हारें साथ न्याय कर रहा हूं या अन्याय।

मर्यादा—मै तुम्हारी छुई चीजें न खाती, तुमसे पृथक रहती पर तुम्हें घर से तो न निकाल सकती थी। मुझे इसलिए न दुत्कार रहे हो कि तुम घर के स्वामी हो और कि मैं इसका पालन करता हूं।

परशुराम—यह बात नहीं है। मै इतना नीच नहीं हूं।

मर्यादा—तो तुम्हारा यहीं अतिमं निश्चय है?

परशुराम—हां, अंतिम।

मर्यादा-- जानते हो इसका परिणाम क्या होगा?

परशुराम—जानता भी हूं और नहीं भी जानता।

मर्यादा—मुझे वासुदेव ले जाने दोगे?

परशुराम—वासुदेव मेरा पुत्र है।

मर्यादा—उसे एक बार प्यार कर लेने दोगे?

परशुराम—अपनी इच्छा से नहीं, तुम्हारी इच्छा हो तो दूर से देख सकती हो।

मर्यादा—तो जाने दो, न देखूंगी। समझ लूंगी कि विधवा हूं और बांझ भी। चलो मन, अब इस घर में तुम्हारा निबाह नहीं है। चलो जहां भाग्य ले जाय।

***

नैराश्य लीला

पंडित हृदयनाथ अयोध्या के एक सम्मानित पुरूष थे। धनवान तो नहीं लेकिन खाने पिने से खुश थे। कई मकान थे, उन्ही के किराये पर गुजर होता था। इधर किराये बढ गये थे, उन्होंने अपनी सवारी भी रख ली थी। बहुत विचार शील आदमी थे, अच्छी शिक्षा पायी थी। संसार का काफी तरजुरबा था, पर क्रियात्मक शकित् से व्रचित थे, सब कुछ न जानते थे। समाज उनकी आंखों में एक भयंकर भूत था जिससे सदैव डरना चाहिए। उसे जरा भी रूष्ट किया तो फिर जाने की खैर नहीं। उनकी स्त्री जागेश्वरी उनका प्रतिबिम्ब, पति के विचार उसके विचार और पति की इच्छा उसकी इच्छा थी, दोनों प्राणियों में कभी मतभेद न होता था। जागेश्चरी खिव की उपासक थी। हृदयनाथ वैष्णव थे, दोनो धर्मनिष्ट थे। उससे कहीं अधिक , जितने समान्यत: शिक्षित लोग हुआ करते है। इसका कदाचित् यह कारण था कि एक कन्या के सिवा उनके और कोई सनतान न थी। उनका विवाह तेरहवें वर्ष में हो गया था और माता-पिता की अब यही लालसा थी कि भगवान इसे पुत्रवती करें तो हम लोग नवासे के नाम अपना सब-कुछ लिख लिखाकर निश्चित हो जायें।

किन्तु विधाता को कुछ और ही मन्जूर था। कैलाश कुमारी का अभी गौना भी न हुआ था, वह अभी तक यह भी न जानने पायी थी कि विवाह का आश्य क्या है कि उसका सोहाग उठ गया। वैधव्य ने उसके जीवन की अभिलाषाओं का दीपक बुझा दिया।

माता और पिता विलाप कर रहे थे, घर में कुहराम मचा हुआ था, पर कैलाशकुमारी भौंचक्की हो-हो कर सबके मुंह की ओर ताकती थी। उसकी समझ में यह न आता था कि ये लोग रोते क्यों हैं। मां बाप की इकलौती बेटी थी। मां-बाप के अतिरिक्त वह किसी तीसरे व्यक्ति को उपने लिए आवश्यक न समझती थी। उसकी सुख कल्पनाओं में अभी तक पति का प्रवेश न हुआ था। वह समझती थी, स्त्रीयां पति के मरने पर इसलिए राती है कि वह उनका और

बच्चों का पालन करता है। मेरे घर में किस बात की कमी है? मुझे इसकी क्या चिन्ता है कि खायेंगे क्या, पहनेगें क्या? मुढरे जिस चीज की जरूरत होगी बाबूजी तुरन्त ला देंगे, अम्मा से जो चीज मागूंगी वह दे देंगी। फिर रोऊं क्यों?वह अपनी मां को रोते देखती तो रोती, पती के शोक से नहीं, मां के प्रेम से । कभी सोचती, शायद यह लोग इसलिए रोते हैं कि कहीं मैं कोई ऐसी चीज न मांग बैठूं जिसे वह दे न सकें। तो मै ऐसी चीज मांगूगी ही क्यो? मै अब भी तो उन से कुछ नहीं मांगती, वह आप ही मेरे लिए एक न एक चीज नित्य लाते रहते हैं? क्या मैं अब कुछ और हो जाऊगीं? इधर माता का यहा हाल था कि बेटी की सूरत देखते ही आंखों से आंसू की झडी लग जाती। बाप की दशा और भी करूणाजनक थी। घर में आना-जाना छोड दिया। सिर पर हाथ धरे कमरे में अकेले उदास बैठे रहते। उसे विशेष दु:ख इस बात का था कि सहेलियां भी अब उसके साथ खेलने न आती। उसने उनके घर लाने की माता से आज्ञा मांगी तो फूट-फूट कर रोने लगीं माता-पिता की यह दशा देखी तो उसने उनके सामने जाना छोड दिया, बैठी किस्से कहानियां पढा करती। उसकी एकांतप्रियता का मां-बाप ने कुछ और ही अर्थ समझा। लडकी शोक के मारे घुली जाती है, इस वज्राघात ने उसके हृदय को टुकडे-टुकडे कर डाला है।

एक दिन हृदयनाथ ने जागेश्वरी से कहा—जी चाहता है घर छोड कर कहीं भाग जाऊं। इसका कष्ट अब नहीं देखा जाता।

जागेश्वरी—मेरी तो भगवान से यही प्राथर्ना है कि मुझे संसार से उठा लें। कहां तक छाती पर पत्थर कीस सिल रखूं।

हृदयनाथ—किसी भातिं इसका मन बहलाना चाहिए, जिसमें शोकमय विचार आने ही न पायें। हम लोंगों को दु:खी और रोते देख कर उसका दु:ख और भी दारूण हो जाता है।

जागेश्वरी—मेरी तो बुद्धि कुछ काम नहीं करती।

हृदयनाथ—हम लोग यों ही मातम करते रहे तो लडंकी की जान पर बन जायेगी। अब कभी कभी थिएटर दिखा दिया, कभी घर में गाना-बजाना करा दिया। इन बातों से उसका दिल बहलता रहेगा।

जागेशवरी—मै तो उसे देखते ही रो पडती हूं। लेकिन अब जब्त करूंगी तुम्हारा विचार बहुत अच्छा है। विना दिल बहलाव के उसका शोक न दूर होगा।

हृदयनाथ—मैं भी अब उससे दिल बहलाने वाली बातें किया करूगां। कल एक सैरबीं लाऊगा, अच्छे-अच्छे दृश्य जमा करूगां। ग्रामोफोन तो अज ही मगवाये देता हूं। बस उसे हर वक्त किसी न किसी कात में लगाये रहना चाहिए। एकातंवास शोक-ज्वाला के लिए समीर के समान है।

उस दिन से जागेश्वरी ने कैलाश कुमारी के लिए विनोद और प्रमोद के समान लमा करने शरू किये। कैलासी मां के पास आती तो उसकी आंखों में आसू की बूंदे न देखती, होठों पर हंसी की आभा दिखाई देती। वह मुस्करा कर कहती –बेटी, आज थिएटर में बहुत अच्छा तमाशा होने वाला है, चलो देख आयें। कभी गंगा-स्नान की ठहरती, वहां मां-बेटी किश्ती पर बैठकर नदी में जल विहार करतीं, कभी दोनों संध्या-समय पाकै की ओर चली जातीं। धीरे-धीरे सहेलियां भी आने लगीं। कभी सब की सब बैठकर ताश खेलतीं। कभी गाती-बजातीं। पण्डित हृदय नाथ ने भी विनोद की सामग्रियां जुटायीं। कैलासी को देखते ही मग्न होकर बोलते—बेटी आओ, तुम्हें आज काश्मीर के दृश्य दिखाऊं: कभी ग्रामोफोन बजाकर उसे सुनाते। कैलासी इन सैर-सपाटों का खूब आन्नद उठाती। अतने सुख से उसके दिन कभी न गुजरे थे।

2

इस भांति दो वर्ष बीत गये। कैलासी सैर-तमाशे की इतनी आदि हो गयी कि एक दिन भी थिएटर न जाती तो बेकल-ससी होने लगती। मनोरंजन नवीननता का दास है और समानता का शत्रु। थिएटरों के बाद सिनेमा की सनक सवार हुई।

सिनेमा के बाद मिस्मेरिज्म और हिपनोटिज्म के तमाशों की सनक सवार हुई। सिनेमा के बाद मिस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म के तमाशों की। ग्रामोफोन के नये रिकार्ड आने लगे। संगीत का चस्का पड गया। बिरादरी में कहीं उत्सव होता तो मां-बेटी अवश्स्य जातीं। कैलासी नित्य इसी नशे में डूबी रहती, चलती तो कुछ गुनगुनती हुई, किसी से बाते करती तो वही थिएटर की और सिनेमा की। भौतिक संसार से अब कोई वास्ता न था, अब उसका निवास कल्पना संसार में था। दूसरे लोक की निवासिन होकर उसे प्राणियों से कोई सहानुभूति न रहीं, किसी के दु:ख पर जरा दया न आती। स्वभाव में उच्छृंखलता का विकास हुआ, अपनी सुरूचि पर गर्व करने लगी। सहेलियों से डींगे मारती, यहां के लोग मूर्ख है, यह सिनेमा की कद्र क्या करेगें। इसकी कद्र तो पश्चिम के लोग करते है। वहां मनोरंजन की सामाग्रियां उतनी ही आवश्यक है जितनी हवा। जभी तो वे उतने प्रसनन-चित्त रहते है, मानो किसी बात की चिंता ही नहीं। यहाँ किसी को इसका रस ही नहीं। जिन्हें भगवान ने सामर्थ्य भी दिया है वह भी सरंशाम से मुह ढांक कर पडे रहमे हैं। सहेलियां कैलासी की यह गर्व-पूर्ण बातें सुनतीं और उसकी और भी प्रशंसा करतीं। वह उनका अपमान करने के आवेश में आप ही हास्यास्पद बन जाती थी।

पडोसियों में इन सैर-सपाटों की चर्चा होने लगी। लोक-सम्मति किसी की रिआयत करती। किसी ने सिर पर टोपी टेढी रखी और पडोसियों की आंखों में खुबा कोई जरा अकड कर चला और पडोसियों ने अवाजें कसीं। विधवा के लिए पूजा-पाठ है, तीर्थ-व्रत है, मोटा खाना पहनना है, उसे विनोदऔर विलास, राग और रंग की क्या जरूरत? विधाता ने उसके द्वार बंद रि दिये है। लडकी प्यारी सही, लेकिन शर्म और हया भी कोई चीज होती है। जब मां-बाप ही उसे सिर चढाये हुए है तो उसका क्या दोष? मगर एक दिन आंखे खुलेगी अवश्य।महिलाएं कहतीं, बाप तो मर्द है, लेकिन मां कैसी है। उसको जरा भी विचार नहीं कि दुनियां क्या कहेगी। कुछ उन्हीं की एक दुलारी बेटी थोडे ही है, इस भांतिमन बढाना अच्छा नहीं।

कुद दिनों तक तो यह खिचडी आपस में पकती रही। अंत को एक दिन कई महिलाओं ने जागेश्वरी के घर पदार्पण किया। जागेश्वरी ने उनका बडा आदर-सत्कार किया। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद एक महिला बोली—महिलाएं रहस्य की बातें करने में बहुत अभ्यस्त होती है—बहन, तुम्हीं मजे में हो कि हंसी-खुसी में दिन काट देती हो। हमुं तो दिन पहाड हो जाता है। न कोई काम न धंधा, कोई कहां तक बातें करें?

दूसरी देवी ने आंखें मटकाते हुए कहा—अरे, तो यह तो बदे की बात है। सभी के दिन हंसी-खुंशी से कटें तो रोये कौन। यहां तो सुबह से शाम तक चक्की-चूल्हे से छुट्टी नहीं मिलती: किसी बच्चे को दस्त आ रहें तो किसी को ज्वर चढा हुआ है: कोई मिठाइयों की रट कहा है: तो कोई पैसो के लिए महानामथ मचाये हुए है। दिन भर हाय-हाय करते बीत जाता है। सारे दिन कठपुतलियों की भांति नाचती रहती हूं।

तीसरी रमणी ने इस कथन का रहस्यमय भाव से विरोध किया—बदे की बात नहीं, वैसा दिल चाहिए। तुम्हें तो कोई राजसिंहासन पर बिठा दे तब भी तस्कीन न होगी। तब और भी हाय-हाय करोगी।

इस पर एक वृद्धा ने कहा—नौज ऐसा दिल: यह भी कोई दिल है कि घर में चाहे आग लग जाय, दुनिया में कितना ही उपहास हो रहा हो, लेकिन आदमी अपने राग-रंग में मस्त रह। वह दिल है कि पत्थर : हम गृहिणी कहलाती है, हमारा काम है अपनी गृहस्थी में रत रहना। आमोद-प्रमोद में दिन काटना हमारा काम नहीं।

और महिलाओं ने इन निर्दय व्यंग्य पर लज्जित हो कर सिर झुका लिया। वे जागेश्वरी की चटुकियां लेना चाहती थीं। उसके साथ बिल्ली और चूहे की निर्दयी क्रीडा करना चाहती थीं। आहत को तडपाना उनका उद्देश्य था। इस खुली हुई चोट ने उनके पर-पीडन प्रेम के लिए कोई गुंजाइश न छोडी: किंतु जागेश्वरी को ताडना मिल गयी। स्त्रियों के विदा होने के बाद उसने जाकर पति

से यह सारी कथा सुनायी। हृदयनाथ उन पुरूषों में न थे जो प्रत्येक अवसर पर अपनी आत्मिक स्वाधीनता का स्वांग भरते है, हठधर्मी को आत्म-स्वातन्त्रय के नाम से छिपाते है। वह सचिन्त भाव से बोले---तो अब क्या होगा?

जागेश्वरी—तुम्हीं कोई उपाय सोचो।

हृदयनाथ—पडोसियों ने जो आक्षेप किया है वह सवर्था उचित है। कैलाशकुमारी के स्वभाव में मुझें एक सविचित्र अन्तर दिखाई दे रहा है। मुझे स्वंम ज्ञात हो रहा है कि उसके मन बहलाव के लिए हम लोंगों ने जो उपाय निकाला है वह मुनासिब नहीं है। उनका यह कथन सत्य है कि विधवाओं के लिए आमोद-प्रामोद वर्जित है। अब हमें यह परिपाटी छोडनी पडेगी।

जागेश्वरी—लेकिन कैलासी तो अन खेल-तमाशों के बिना एक दिन भी नहीं रह सकती।

हृदयनाथ—उसकी मनोवृत्तियों को बदलना पडेगा।

3

शनैःशैने यह विलोसोल्माद शांत होने लगा। वासना का तिरस्कार किया जाने लगा। पंडित जी संध्या समय ग्रमोफोन न बजाकर कोई धर्म-ग्रंथ सुनते। स्वाध्याय, संसम उपासना में मां-बेटी रत रहने लगीं। कैलासी को गुरू जी ने दीक्षा दी, मुहल्ले और बिरादरी की स्त्रियां आयीं, उत्सव मनाया गया।

मां-बेटी अब किश्ती पर सैर करने के लिए गंगा न जातीं, बल्कि स्नान करने के लिए। मंदिरो में नित्य जातीं। दोनां एकादशी का निर्जल व्रम रखने लगीं। कैलासी को गुरूजी नित्य संध्या-समय धर्मोपदेश करते। कुछ दिनों तक तो कैलासी को यह विचार-परिर्वतन बहुत कष्टजनक मालूम हुआ, पर धर्मनिष्ठा

नारियों का स्वाभाविक गुण है, थोडे ही दिनो में उसे धर्म से रूची हो गयी। अब उसे अपनी अवस्था का ज्ञान होने लगा था। विषय-वासना से चित्त आप ही आप खिंचने लगा। पति का यथार्थ आशय समझ में आने लगा था। पति ही स्त्री का सच्चा पथ प्रदर्शक और सच्चा सहायक है। पतिविहीन होना किसी घोर पाप का प्रायश्चित है। मैने पूर्व-जन्म में कोई अकर्म किया होगा। पतिदेव जीवित होते तो मै फिर माया में फंस जाती। प्रायश्चित कर अवसर कहां मिलता। गुरूजी का वचन सत्य है कि परमात्मा ने तुम्हें पूर्व कर्मों के प्रायश्चित का अवसर दिया है। वैधव्य यातना नहीं है, जीवोद्धर का साधन है। मेरा उद्धार त्याग, विराग, भक्ति और उपासना से होगा।

कुछ दिनों के बाद उसकी धार्मिक वृत्ति इतनी प्रबल हो गयी, कि अन्य प्राणियों से वह पृथक् रहने लगी। किसी को न छूती, महरियों से दूर रहती, सहेलियों से गले तक न मिलती, दिन में दो-दो तीन-तीन बार स्नान करती, हमेशा कोई न कोई धर्म-ग्रन्थ पढा करती। साधु –महात्माओं के सेवा-सत्कार में उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता। जहां किसी महात्मा के आने की खबर पाती, उनके दर्शनों के लिए कवकल हो जाती। उनकी अमृतवाणी सुनने से जी न भरता। मन संसार से विरक्त होने लगा। तल्लीनता की अवस्था प्राप्त हो गयी। घंटो ध्यान और चिंतन में मग्न रहती। समाजिक बंधनो से घृण हो गयी। घंटो ध्यान और चिंतन में मग्न रहती। हृदय स्वाधिनता के लिए लालायित हो गया: यहां तक कि तीन ही बरसों में उसने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय कर लिया।

मां-बाप को यह समाचार ज्ञात हुआ ता होश उड गये। मां बोली—बेटी, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है कि तुम ऐसी बातें सोचती हो।

कैलाशकुमारी—माया-मोह से जितनी जल्द निवृत्ति हो जाय उतना ही अच्छा।

हृदयनाथ—क्या अपने घर मे रहकर माया-मोह से मुक्त नहीं हो सकती हो? माया-मोह का स्थान मन है, घर नहीं।

जागेश्वरी—कितनी बदनामी होगी।

कैलाशकुमारी—अपने को भगवान् के चरणों पर अर्पण कर चुकी तो बदनामी क्या चिंता?

जागेश्वरी—बेटी, तुम्हें न हो , हमको तो है। हमें तो तुम्हारा ही सहरा है। तुमने जो संयास लिया तो हम किस आधार पर जियेंगे?

कैलाशकुमारी—परमात्मा ही सबका आधार है। किसी दूसरे प्राणी का आश्रय लेना भूल है।

दूसरे दिन यह बात मुहल्ले वालों के कानों में पहुंच गयी। जब कोई अवस्था असाध्य हो जाती है तो हम उस पर व्यंग करने लगते है। 'यह तो होना ही था, नयी बात क्या हुई, लडिकियों को इस तरह स्वछंद नहीं कर दिया जाता, फूले न समाते थे कि लडकी ने कुल का नाम उज्जवल कर दिया। पुराण पढती है, उपनिषद् और वेदांत का पाठ करती है, धार्मिक समस्याओं पर ऐसी-ऐसी दलीलें करती है कि बडे-बडे विद्वानों की जबान बंद हो जाती है तो अब क्यों पछताते है?'

भद्र पुरूषों में कई दिनों तक यही आलोचना हाती रही। लेकिन जैसे अपने बच्चे के दौडते-दौडते –धम से गिर पडने पर हम पहले क्रोध के आवेश में उसे झिडकियां सुनाते है, इसके बाद गोद में बिठाकर आंसू पोछतें और फुसलाने का लगते है: उसी तरह इन भद्र पुरूषों ने व्यग्य के बाद इस गुत्थी के सुलझाने का उपाय सोचना शुरू किया। कई सज्जन हृदयनाथ के पास आये और सिर झुकाकर बैठ गये। विषय का आरम्भ कैसे हो?

कई मिनट के बाद एक सज्जन ने कहा –ससुना है डाक्टर गौड का प्रस्ताव आज बहुमत से
स्वीकृत हो गया।

दूसरे महाश्य बोले—यह लोग हिंदू-धर्म का सर्वनाश करके छोडेगें। कोई क्या करेगा, जब हमारे साधु-महात्मा, हिंदू-जाति के स्तंभ है, इतने पतित हो गए हैं कि भोली-भाली युवतियों को बहकाने में संकोच नहीं करते तो सर्वनाश होनें में रह ही क्या गया।

हृदयनाथ—यह विपत्ति तो मेरे सिर ही पडी हुई है। आप लोगों को तो मालूम होगा।

पहले महाश्य –आप ही के सिर क्यों, हम सभी के सिर पडी हुई है।

दूसरो महाश्य –समस्त जाति के सिर कहिए।

हृदयनाथ—उद्धार का कोई उपाय सोचिए।

पहले महाश्य—अपने समझाया नहीं?

हृदयनाथ—समझा के हार गया। कुछ सुनती ही नहीं।

तीसरे महाश्य—पहले ही भूल हुई। उसे इस रास्ते पर उतरना ही नहीं चाहिए था।

पहले महाशय—उस पर पछताने से क्या होगा? सिर पर जो पडी है, उसका उपाय सोचना चाहिए। आपने समाचार-पत्रों में देखा होगा, कुछ लोगों की सलाह है कि विधवाओं से अध्यापको का काम लेना चाहिए। यद्यपि मैं इसे भी बहुत अच्छा नहीं समझता,पर संन्यासिनी बनने से तो कहीं अच्छा है। लडकी अपनी आंखों के सामने तो रहेगी। अभिप्राय केवल यही है कि कोई ऐसा काम होना चाहिए जिसमें लडकी का मन लगें। किसी अवलम्ब के बिना मनुष्य को भटक जाने की शंका सदैव बनी रहती है। जिस घर में कोई नहीं रहता उसमें चमगादड बसेरा कर लेते हैं।

दूसरे महाशय –सलाह तो अच्छी है। मुहल्ले की दस-पांच कन्याएं पढने के लिए बुला ली जाएं। उन्हे किताबें, गुडियां आदि इनाम मिलता रहे तो बडे शौक से आयेंगी। लडकी का मन तो लग जायेगा।

हृदयनाथ—देखना चाहिए। भरसक समझाऊगां।

ज्यों ही यह लोग विदा हुए: हृदयनाथ ने कैलाशकुमारी के सामने यह तजवीज पेश की कैलासी को सुन्यस्त के उच्च पद के सामने अध्यापिका बनना अपमानजनक जान पडता था। कहां वह महात्माओं का सत्संग, वह पर्वतो की गुफा, वह सुरम्य प्राकृतिक दृश्य वहहिमराशि की ज्ञानमय ज्योति, वह मानसरावर और कैलास की शुभ्र छटा, वह आत्मदर्शन की विशाल कल्पनाएं, और कहाँ बालिकाओं को चिडियों की भांति पढाना। लेकिन हृदयनाथ कई दिनों तक लगातार से वा धर्म का माहातम्य उसके हृदय पर अंकित करते रहे। सेवा ही वास्तविक संन्यस है। संन्यासी केवल अपनी मुक्ति का इच्छुक होता है, सेवा व्रतधरी अपने को परमार्थ की वेदी पर बलि दे देता है। इसका गौरव कहीं अधिक है। देखो, ऋषियों में दधीचि का जो यश है, हरिश्चंद्र की जो कीर्ति है, सेवा त्याग है, आदि। उन्होंने इस कथन की उपनिषदों और वेदमंत्रों से पुष्टि की यहां तक कि धीरे-धीरे कैलासी के विचारों में परिवतर्न होने लगा। पंडित जी ने मुहल्ले वालों की लडकियों को एकत्र किया, पाठशाला का जन्म हो गया। नाना प्रकार के चित्र और खिलौने मंगाए। पंडित जी स्वंय कैलाशकुमारी के साथ लडकियों को पढाते। कन्याएं शौक से आतीं। उन्हे यहां की पढाई खेल मालूम होता। थोडे ही हदनों में पाठशाला की धूम हो गयी, अन्य मुहल्लों की कन्याएं भी आने लगीं।

4

कैलास कुमारी की सेवा-प्रवृत्ति दिनों-दिन तीव्र होने लगी। दिन भर लडकियों को लिए रहती: कभी पढाती, कभी उनके साथ खेलती, कभी सीना-पिरोना सिखाती। पाठशाला ने परिवार का रूप धारण कर लिया। कोई लडकी बीमार हो

जाती तो तुरन्त उसके घर जाती, उसकी सेवा-सुश्रूषा करती, गा कर या कहानियां सुनाकर उसका दिल बहलाती।

पाठशाला को खुले हुए साल-भर हुआ था। एक लडकी को, जिससे वह बहुत प्रेम करती थी, चेचक निकल आयी। कैलासी उसे देखने गई। मां-बाप ने बहुत मना किया, पर उसने न माना। कहा, तुरन्त लौट आऊंगी। लडकी की हालत खराब थी। कहां तो रोते-रोते तालू सूखता था, कहां कैलासी को देखते ही सारे कष्ट भाग गये। कैलासी एक घंटे तक वहां रही। लडकी बराबर उससे बातें करती रही। लेकिन जब वह चलने को उठी तो लडकी ने रोना शुरू कर दिया। कैलासी मजबूर होकर बैठ गयी। थोडी देर बाद वह फिर उठी तो फिर लडकी की यह दशा हो गयी। लडकी उसे किसी तरह छोडती ही न थी। सारा दिन गुजर गया। रात को भी रात को लडकी ने जाने न दियां। हृदयनाथ उसे बुलाने को बार-बार आदमी भेजते, पर वह लडकी को छोडकर न जा सकती। उसे ऐसी शंका होती थी कि मैं यहां से चली और लडकी हाथ से गयी। उसकी मां विमाता थी। इससे कैलासी को उसके ममत्व पर विश्वास न होता था। इस प्रकार तीन दिनों तक वह वहां राही। आठों पहर बालिका के सिरहाने बैठी पंखा झलती रहती। बहुत थक जाती तो दीवार से पीठ टेक लेती। चौथे दिन लडकी की हालत कुछ संभलती हुई मालूम हुई तो वह अपने घर आयी। मगर अभी स्नान भी न करने पायी थी कि आदमी पहुंचा—जल्द चलिए, लडकी रो-रो कर जान दे रही है।

हृदयनाथ ने कहा—कह दो, अस्पताल से कोई नर्स बुला लें।

कैलसकुमारी-दादा, आप व्यर्थ में झुझलाते हैं। उस बेचारी की जान बच जाय, मै तीन दिन नहीं, जीन महिने उसकी सेवा करने को तैयार हूं। आखिर यह देह किस काम आएगी।

हृदयनाथ—तो कन्याएं कैसे पढेगी?

कैलासी—दो एक दिन में वह अच्छी हो जाएगी, दाने मुरझाने लगे हैं, तब तक आप लरा इन लडकियों की देखभाल करते रहिएगा।

हृदयनाथ—यह बीमारी छूत फैलाती है।

कैलासी—(हंसकर) मर जाऊंगी तो आपके सिर से एक विपत्ति टल जाएगी। यह कहकर उसने उधर की राह ली। भोजन की थाली परसी रह गयी।

तब हृदयनाथ ने जागेश्वरी से कहा---जान पडता है, बहुत जल्द यह पाठशाला भी बन्द करनी पडेगी।

जागेश्वरी—बिना मांझी के नाव पार लगाना बहुत कठिन है। जिधर हवा पाती है, उधर बह जाती है।

हृदयनाथ—जो रास्ता निकालता हूं वही कुछ दिनों के बाद किसी दलदल में फंसा देता है। अब फिर बदनामी के समान होते नजर आ रहे है। लोग कहेंगें, लडकी दूसरों के घर जाती है और कई-कई दिन पडी रहती है। क्या करूं, कह दूं, लडकियों को न पढाया करो?

जागेश्वरी –इसके सिवा और हो क्या सकता है।

कैलाशकुमारी दो दिन बाद लौटी तो हृदयनाथ ने पाठशाला बंद कर देने की समस्या उसके सामने रखी। कैलासी ने तीव्र स्वर से कहा—अगर आपको बदनामी का इतना भय है तो मुझे विष दे दीजिए। इसके सिवा बदनामी से बचने का और कोई उपाय नहीं है।

हृदयनाथ—बेटी संसार में रहकर तो संसार की-सी करनी पडेगी।

कैलासी तो कुछ मालूम भी तो हो कि संसार मुझसे क्या चाहता है। मुझमें जीव है, चेतना है, जड क्योंकर बन जाऊ। मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को

अभाहगन, दुखिया समझूं और एक टुकडा रोटी खाकर पडी रहूं। ऐसा क्यों करूं? संसार मुझे जो चाहे समझे, मै अपने को अभागिनी नहीं समझती। मै अपने आत्म-सम्मान की रक्षा आप कर सकती हूं। मैं इसे घोर अपमान समझती हूं कि पग-पग पर मुझ पर शंका की जाए, नित्य कोई चरवाहों की भांति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता रहे कि किसी खेत में न जाने बूडू। यह दशा मेरे लिए असहय हैं।

यह कहकर कैलाशकुमारी वहां से चली गयी कि कहीं मुंह से अनर्गल शब्द न निकल पडें। इधर कुछ दिनों से उसे अपनी बेकसी का यर्थाथ ज्ञान होने लगा था स्त्री पुरूष की कितली अधीन है, मानो स्त्री को विधाता ने इसलिए बनाया है कि पुरूषों के अधिन रहं यह सोचकर वह समाज के अत्याचार पर दांत पीसने लगती थी।

पाठशाला तो दूसरे दिन बन्द हो गयी, किन्तु उसी दिन कैलाशकुमारी को पुरूषों से जलन होने लगी। जिस सुख-भोग से प्रारब्ध हमें वंचित कर देता है उससे हमे द्वेष हो जाता है। गरीब आदमी इसीलए तो अमीरों से जलता है और धन की निन्दा करता है। कैलाशी बार-बार झुंझलाती कि स्त्री क्यों पुरूष पर इतनी अवलम्बित है? पुरूशष क्यों स्त्री के भग्य का विधायक है? स्त्री क्यों नित्य पुरूषों का आश्रय चाहे, उनका मुंह ताके? इसलिए न कि स्त्रियों में अभिमान नहीं है, आत्म सम्मान नहीं है। नारी हृदय के कोमल भाव, उसे कुत्ते का दुम हिलाना मालूम होने लगे। प्रेम कैसा। यह सब ढोग है, स्त्री पुरूष के अधिन है, उसकी खुशमद न करे, सेवा न करे, तो उसका निर्वाह कैसे हो।

एक दिन उसने अपने बाल गूंथे और जूडे में एक गुलाब का फूल लगा लिया। मां ने देखा तो ओठं से जीभ दबा ली। महरियों ने छाती पर हाथ रखे।

इसी तरह एक दिन उसने रंगीन रेशमी साडी पहन ली। पडोसिनों में इस पर खूब आलोचनाएँ हुईं।

उसने एकादशी का व्रत रखनाउ छोड दिया जो पिछले आठ वर्षों से रखमी आयीं थी। कंघी और आइने को वह अब त्याज्य न समझती थी।

सहालग के दिन आए। नित्य प्रति उसके द्वार पर से बरातें निकलतीं । मुहल्ले की स्त्रियाँ अपनी अटारियों पर खडी होकर देखती। वर के रंग-रूप, आकर-प्रकार पर टिकाएं होती, जागेश्वरी से भी बिना एक आख देखे रहा नह जाता। लेकिन कैलाशकुमारी कभी भूलकर भी इन जालूसो को न देखती। कोई बरात या विवाह की बात चलाता तो वह मुहं फेर लेती। उसकी दृष्टि में वह विवाह नहीं, भोली-भाली कन्याओं का शिकार था। बरातों को वह शिकारियों के कुत्ते समझती। यह विवाह नहीं बलिदान है।

5

तीज का व्रत आया। घरों की सफाई होने लगी। रमणियां इस व्रत को तैयारियां करने लगीं। जागेश्वरी ने भी व्रत का सामान किया। नयी-नयी साडिया मगवायीं। कैलाशकुमारी के ससुराल से इस अवसर पर कपडे , मिठाईयां और खिलौने आया करते थे।अबकी भी आए। यह विवाहिता स्त्रियों का व्रत है। इसका फल है पति का कल्याण। विधवाएं भी अस व्रत का यथेचित रीति से पालन करती है। ति से उनका सम्बन्ध शारीरिक नहीं वरन् आध्यात्मिक होता है। उसका इस जीवन के साथ अन्त नहीं होता, अनंतकाल तक जीवित रहता है। कैलाशकुमारी अब तक यह व्रत रखती आयी थी। अब उसने निश्चय किया मै व्रत न रखूंगी। मां ने तो माथा ठोंक लिया। बोली— बेटी, यह व्रत रखना धर्म है।

कैलाशकुमारी-पुरष भी स्त्रियों के लिए कोई व्रत रखते है?

जागेश्वरी—मर्दों में इसकी प्रथा नहीं है।

कैलाशकुमारी—इसलिए न कि पुरूषों की जान उतनी प्यारी नही होती जितनी स्त्रियों को पुरूषों की जान?

जागेश्वरी—स्त्रियां पुरूषों की बराबरी कैसे कर सकती हैं? उनका तो धर्म है अपने पुरूष की सेवा करना।

कैलाशकुमारी—मै अपना धर्म नहीं समझती। मेरे लिए अपनी आत्मा की रक्षा के सिवा और कोई धर्म नहीं?

जागेश्वरी—बेटी गजब हो जायेगा, दुनिया क्या कहेगी?

कैलाशकुमारी –फिर वही दुनिया? अपनी आत्मा के सिवा मुझे किसी का भय नहीं।

हृदयनाथ ने जागेश्वरी से यह बातें सुनीं तो चिन्ता सागर में डूब गए। इन बातों का क्या आश्य? क्या आत्म-सम्मान को भाव जाग्रत हुआ है या नैरश्य की क्रूर क्रीडा है? धनहीन प्राणी को जब कष्ट-निवारण का कोई उपाय नहीं रह जाता तो वह लज्जा को त्याग देता है। निस्संदेह नैराश्य ने यह भीषण रूप धारण किया है। सामान्य दशाओं में नैराश्य अपने यथार्थ रूप मे आता है, पर गर्वशील प्राणियों में वह परिमार्जित रूप ग्रहण कर लेता है। यहां पर हृदयगत कोमल भावों को अपहरण कर लेता है—चरित्र में अस्वाभाविक विकास उत्पन्न कर देता है—मनुष्य लोक-लाज उपवासे और उपहास की ओर से उदासीन हो जाता है, नैतिक बन्धन टूट जाते है। यह नैराश्य की अतिंम अवस्था है।

हृदयनाथ इन्हीं विचारों मे मग्न थे कि जागेश्वरी ने कहा –अब क्या करनाउ होगा?

जागेश्वरी—कोई उपाय है?

हृदयनाथ—बस एक ही उपाय है, पर उसे जबान पर नहीं ला सकता

***

कौशल

पंडित बलराम शास्त्री की धर्मपत्नी माया को बहुत दिनों से एक हार की लालसा थी और वह सैकडो ही बार पंडित जी से उसके लिए आग्रह कर चुकी थी, किन्तु पंडित जी हीला-हवाला करते रहते थे। यह तो साफ-साफ ने कहते थे कि मेरे पास रूपये नही है—इनसे उनके पराक्रम में बट्टा लगता था—तर्कनाओं की शरण लिया करते थे। गहनों से कुछ लाभ नहीं एक तो धातु अच्छी नहीं मिलती, उस पर सोनार रुपसे के आठ-आठ आने कर देता है और सबसे बडी बात यह है कि घर में गहने रखना चोरो को नेवता देन है। घडी-भर श्रृगांर के लिए इतनी विपत्ति सिर पर लेना मूर्खो का काम है। बेचारी माया तर्क –शास्त्र न पढी थी, इन युक्तियों के सामने निरूत्तर हो जाती थी। पडोसिनो को देख-देख कर उसका जी ललचा करता था, पर दुख किससे कहे। यदि पंडित जी ज्यादा मेहनत करने के योग्य होते तो यह मुश्किल आसान हो जाती । पर वे आलसी जीव थे, अधिकांश समय भोजन और विश्राम में व्यतित किया करते थे। पत्नी जी की कटूक्तियां सुननी मंजूर थीं, लेकिन निद्रा की मात्रा में कमी न कर सकते थे।

एक दिन पंडित जी पाठशाला से आये तो देखा कि माया के गले में सोने का हार विराज रहा है। हार की चमक से उसकी मुख-ज्योति चमक उठी थी। उन्होने उसे कभी इतनी सुन्दर न समझा था। पूछा –यह हार किसका है?

माया बोली—पडोस में जो बाबूजी रहते हैं उन्ही की स्त्री का है।

आज उनसे मिलने गयी थी, यह हार देखा , बहुत पसंद आया। तुम्हें दिखाने के लिए पहन कर चली आई। बस, ऐसा ही एक हार मुझे बनवा दो।

पंडित—दूसरे की चीज नाहक मांग लायी। कहीं चोरी हो जाए तो हार तो बनवाना ही पडे, उपर से बदनामी भी हो।

माया—मैं तो ऐसा ही हार लूगी। २० तोले का है।

पंडित—फिर वही जिद।

माया—जब सभी पहनती हैं तो मै ही क्यों न पहनूं?

पंडित—सब कुएं में गिर पडें तो तुम भी कुएं में गिर पडोगी। सोचो तो, इस वक्त इस हार के बनवाने में ६०० रुपये लगेगे। अगर १ रु० प्रति सैकडा ब्याज रखलिया जाय ता – वर्ष मे ६०० रू० के लगभग १००० रु० हो जायेगें। लेकिन ५ वर्ष में तुम्हारा हार मुश्किल से ३०० रू० का रह जायेगा। इतना बडा नुकसान उठाकर हार पहनने से क्या सुख? सह हार वापस कर दो , भोजन करो और आराम से पडी रहो। यह कहते हुए पंडित जी बाहर चले गये।

रात को एकाएक माया ने शोर मचाकर कहा –चोर,चोर,हाय, घर में चोर , मुझे घसीटे लिए जाते हैं।

पंडित जी हकबका कर उठे और बोले –कहा, कहां? दौडो,दौडो।

माया—मेरी कोठारी में गया है। मैनें उसकी परछाईं देखी ।

पंडित—लालटेन लाओं, जरा मेरी लकडी उठा लेना।

माया—मुझसे तो डर के उठा नहीं जाता।

कई आदमी बाहर से बोले—कहां है पंडित जी, कोई सेंध पडी है क्या?

माया—नहीं,नहीं, खपरैल पर से उतरे हैं। मेरी नीदं खुली तो कोई मेरे ऊपर झुका हुआ था। हाय रे, यह तो हार ही ले गया, पहने-पहने सो गई थी। मुए ने गले से निकाल लिया । हाय भगवान,

पंडित—तुमने हार उतार क्यां न दिया था?

माया-मै क्या जानती थी कि आज ही यह मुसीबत सिर पडने वाली है, हाय भगवान्,

पंडित—अब हाय-हाय करने से क्या होगा? अपने कर्मों को रोओ। इसीलिए कहा करता था कि सब घडी बराबर नहीं जाती, न जाने कब क्या हो जाए। अब आयी समझ में मेरी बात, देखो, और कुछ तो न ले गया?

पडोसी लालटेन लिए आ पहुंचे। घर में कोना –कोना देखा। करियां देखीं, छत पर चढकर देखा, अगवाडे-पिछवाडे देखा, शौच गृह में झाका, कहीं चोर का पता न था।

एक पडोसी—किसी जानकार आदमी का काम है।

दूसरा पडोसी—बिना घर के भेदिये के कभी चोरी नहीं होती। और कुछ तो नहीं ले गया?

माया—और तो कुड नहीं गया। बरतन सब पडे हुए हैं। सन्दूक भी बन्द पडे है। निगोडे को ले ही जाना था तो मेरी चीजें ले जाता । परायी चीज ठहरी। भगवान् उन्हें कौन मुंह दिखाऊगी।

पंडित—अब गहने का मजा मिल गया न?

माया—हाय, भगवान्, यह अपजस बदा था।

पंडित—कितना समझा के हार गया, तुम न मानीं, न मानीं। बात की बात में ६००रू० निकल गए, अब देखूं भगवान कैसे लाज रखते हैं।

माया—अभागे मेरे घर का एक-एक तिनका चुन ले जाते तो मुझे इतना दु:ख न होता। अभी बेचारी ने नया ही बनावाया था।

पंडित—खूब मालूम है, २० तोले का था?

माया—२० ही तोले को तो कहती थी?

पंडित—बधिया बैठ गई और क्या?

माया—कह दूंगी घर में चोरी हो गयी। क्या लेगी? अब उनके लिए कोई चोरी थोडे ही करने जायेगा।

पंडित तुम्हारे घर से चीज गयी, तुम्हें देनी पडेगी। उन्हे इससे क्या प्रयोजन कि चोर ले गया या तुमने उठाकर रख लिया। पतिययेगी ही नही।

माया –तो इतने रूपये कहां से आयेगे?

पंडित—कहीं न कहीं से तो आयेंगे ही,नहीं तो लाज कैसे रहेगी: मगर की तुमने बडी भूल ।

माया—भगवान् से मंगनी की चीज भी न देखी गयी। मुझे काल ने घेरा था, नहीं तो इस घडी भर गले में डाल लेने से ऐसा कौन-सा बडा सुख मिल गया? मै हूं ही अभागिनी।

पंडित—अब पछताने और अपने को कोसने से क्या फायदा? चुप हो के बैठो, पडोसिन से कह देना, घबराओं नहीं, तुम्हारी चीज जब तक लौटा न देंगें, तब तक हमें चैन न आयेगा।

2

पंडित बालकराम को अब नित्य ही चिंता रहने लगी कि किसी तरह हार बने। यों अगर टाट उलट देते तो कोई बात न थी । पडोसिन को सन्तोष ही करना पडता, ब्राह्मण से डाडं कौन लेता, किन्तु पंडित जी ब्राह्मणत्व के गौरव को

इतने सस्ते दामों न बेचना चाहते थे। आलस्य छोडंकर धनोपार्जन में दत्तचित्त हो गये।

छ: महीने तक उन्होने दिन को दिन और रात को रात नहीं जाना। दोपहर को सोना छोड दिया, रात को भी बहुत देर तक जागते। पहले केवल एक पाठशाला में पढाया करते थे। इसके सिवा वह ब्राह्मण के लिए खुले हुए एक सौ एक व्यवसायों में सभी को निंदनिय समझते थे। अब पाठशाला से आकर संध्या एक जगह 'भगवत्' की कथा कहने जाते वहां से लौट कर ११-१२ बजे रात तक जन्म कुंडलियां, वर्ष-फल आदि बनाया करते। प्रात:काल मन्दिर में 'दुर्गा जी का पाठ करते । माया पंडित जी का अध्यवसाय देखकर कभी-कभी पछताती कि कहां से मैने यह विपत्ति सिर पर लीं कहीं बीमार पड जायें तो लेने के देने पडे। उनका शरीर क्षीण होते देखकर उसे अब यह चिनता व्यथित करने जगी। यहां तक कि पांच महीने गुजर गये।

एक दिन संध्या समय वह दिया-बत्ति करने जा रही थी कि पंडित जी आये, जेब से पुडिया निकाल कर उसके सामने फैंक दी और बोले—लो, आज तुम्हारे ऋण से मुक्त हो गया।

माया ने पुडिया खोली तो उसमें सोने का हार था, उसकी चमक-दमक, उसकी सुन्दर बनावट देखकर उसके अन्त:स्थल में गुदगदी –सी होने लगी । मुख पर आन्नद की आभा दौड गई। उसने कातर नेत्रों से देखकर पूछा—खुश हो कर दे रहे हो या नाराज होकर1.

पंडित—इससे क्या मतलब? ऋण तो चुकाना ही पडेगा, चाहे खुशी हो या नाखुशी।

माया—यह ऋण नहीं है।

पंडित—और क्या है, बदला सही।

माया—बदला भी नहीं है।

पंडित फिर क्या है।

माया—तुम्हारी ..निशानी?

पंडित—तो क्या ऋण के लिए कोई दूसरा हार बनवाना पडेगा?

माया—नहीं-नहीं, वह हार चोरी नहीं गया था। मैनें झूठ-मूठ शोर मचाया था।

पंडित—सच?

माया—हां, सच कहती हूं।

पंडित—मेरी कसम?

माया—तुम्हारे चरण छूकर कहती हूं।

पंडित—तो तमने मुझसे कौशल किया था?

माया-हां?

पंडित—तुम्हे मालूम है, तुम्हारे कौशल का मुझे क्या मूल्य देना पडा।

माया—क्या ६०० रु० से ऊपर?

पंडित—बहुत ऊपर? इसके लिए मुझे अपने आत्मस्वातंत्रय को बलिदान करना पडा।

***

स्वर्ग की देवी

भाग्य की बात ! शादी विवाह में आदमी का क्या अख्तियार । जिससे ईश्वर ने, या उनके नायबों –ब्रह्मण—ने तय कर दी, उससे हो गयी। बाबू भारतदास ने लीला के लिए सुयोग्य वर खोजने में कोई बात उठा नही रखी। लेकिन जैसा घर-घर चाहते थे, वैसा न पा सके। वह लडकी को सुखी देखना चाहते थे, जैसा हर एक पिता का धर्म है ; किंतु इसके लिए उनकी समझ में सम्पत्ति ही सबसे जरूरी चीज थी। चरित्र या शिक्षा का स्थान गौण था। चरित्र तो किसी के माथे पर लिखा नही रहता और शिक्षा का आजकल के जमाने में मूल्य ही क्या ? हां, सम्पत्ति के साथ शिक्षा भी हो तो क्या पूछना ! ऐसा घर बहुत ढढा पर न मिला तो अपनी विरादरी के न थे। बिरादरी भी मिली, तो जायजा न मिला!; जायजा भी मिला तो शर्ते तय न हो सकी। इस तरह मजबूर होकर भारतदास को लीला का विवाह लाला सन्तसरन के लडके सीतासरन से करना पडा। अपने बाप का इकलौता बेटा था, थोडी बहुत शिक्षा भी पायी थी, बातचीत सलीके से करता था, मामले-मुकदमें समझता था और जरा दिल का रंगीला भी था । सबसे बडी बात यह थी कि रूपवान, बलिष्ठ, प्रसन्न मुख, साहसी आदमी था ; मगर विचार वही बाबा आदम के जमाने के थे। पुरानी जितनी बाते है, सब अच्छी ; नयी जितनी बातें है, सब खराब है। जायदाद के विषय में जमींदार साहब नये-नये दफों का व्यवहार करते थे, वहां अपना कोई अख्तियार न था ; लेकिन सामाजिक प्रथाओं के कटटर पक्षपाती थे। सीतासरन अपने बाप को जो करते या कहते वही खुद भी कहता था। उसमें खुद सोचने की शक्ति ही न थी। बुद्वि की मंदता बहुधा सामाजिक अनुदारता के रूप में प्रकट होती है।

2

लीला ने जिस दिन घर में वॉव रखा उसी दिन उसकी परीक्षा शुरू हुई। वे सभी काम, जिनकी उसके घर में तारीफ होती थी यहां वर्जित थे। उसे बचपन से

ताजी हवा पर जान देना सिखाया गया था, यहां उसके सामने मुंह खोलना भी पाप था। बचपन से सिखाया गया था रोशनी ही जीवन है, यहां रोशनी के दर्शन दुर्भभ थे। घर पर अहिंसा, क्षमा और दया ईश्वरीय गुण बताये गये थे, यहां इनका नाम लेने की भी स्वाधीनता थी। संतसरन बडे तीखे, गुस्सेवर आदमी थे, नाक पर मक्खी न बैठने देते। धूर्तता और छल-कपट से ही उन्होने जायदाद पैदा की थी। और उसी को सफल जीवन का मंत्र समझते थे। उनकी पत्नी उनसे भी दो अंगुल ऊंची थीं। मजाल क्या है कि बहू अपनी अंधेरी कोठरी के द्वार पर खडी हो जाय, या कभी छत पर टहल सकें । प्रलय आ जाता, आसमान सिर पर उठा लेती। उन्हें बकने का मर्ज था। दाल में नमक का जरा तेज हो जाना उन्हें दिन भर बकने के लिए काफी बहाना था । मोटी-ताजी महिला थी, छींट का घाघरेदार लंहगा पहने, पानदान बगल में रखे, गहनो से लदी हुई, सारे दिन बरोठे में माची पर बैठी रहती थी। क्या मजाल कि घर में उनकी इच्छा के विरूद्व एक पत्ता भी हिल जाय ! बहू की नयी-नयी आदतें देख देख जला करती थी। अब काहे की आबरू होगी। मुंडेर पर खडी हो कर झांकती है। मेरी लडकी ऐसी दीदा-दिलेर होती तो गला घोंट देती। न जाने इसके देश में कौन लोग बसते है ! गहनें नही पहनती। जब देखो नंगी-बुच्ची बनी बैठी रहती है। यह भी कोई अच्छे लच्छन है। लीला के पीछे सीतासरन पर भी फटकार पडती। तुझे भी चाँदनी में सोना अच्छा लगता है, क्यों ? तू भी अपने को मर्द कहता कहेगा ? यह मर्द कैसा कि औरत उसके कहने में न रहे। दिन-भर घर में घुसा रहता है। मुंह में जबान नही है ? समझता क्यों नही ?

सीतासरन कहता---अम्मां, जब कोई मेरे समझाने से माने तब तो?

मां---मानेगी क्यो नही, तू मर्द है कि नही ? मर्द वह चाहिए कि कडी निगाह से देखे तो औरत कांप उठे।

सीतासरन -----तुम तो समझाती ही रहती हो ।

मां ---मेरी उसे क्या परवाह ? समझती होगी, बुढिया चार दिन में मर जायगी तब मैं मालकिन हो ही जाउँगी

सीतासरन --- तो मैं भी तो उसकी बातों का जबाब नही दे पाता। देखती नही हो कितनी दुर्बल हो गयी है। वह रंग ही नही रहा। उस कोठरी में पडे-पडे उसकी दशा बिगडती जाती है।

बेटे के मुंह से ऐसी बातें सुन माता आग हो जाती और सारे दिन जलती; कभी भाग्य को कोसती, कभी समय को।

सीतासरन माता के सामने तो ऐसी बातें करता ; लेकिन लीला के सामने जाते ही उसकी मति बदल जाती थी। वह वही बातें करता था जो लीला को अच्छी लगती। यहां तक कि दोनों वृद्वा की हंसी उडातें। लीला को इस में ओर कोई सुख न था । वह सारे दिन कुढती रहती। कभी चूल्हे के सामने न बैठी थी ; पर यहां पसेरियों आटा थेपना पडता, मजूरों और टहलुओं के लिए रोटी पकानी पडती। कभी-कभी वह चूल्हे के सामने बैठी घंटो रोती। यह बात न थी कि यह लोग कोई महाराज-रसोइया न रख सकते हो; पर घर की पुरानी प्रथा यही थी कि बहू खाना पकाये और उस प्रथा का निभाना जरूरी था। सीतासरन को देखकर लीला का संतप्त ह्रदय एक क्षण के लिए शान्त हो जाता था।

गर्मी के दिन थे और सन्ध्या का समय था। बाहर हवा चलती, भीतर देह फुकती थी। लीला कोठरी में बैठी एक किताब देख रही थी कि सीतासरन ने आकर कहा--- यहां तो बडी गर्मी है, बाहर बैठो।

लीला—यह गर्मी तो उन तानो से अच्छी है जो अभी सुनने पडेगे।

सीतासरन—आज अगर बोली तो मैं भी बिगड जाऊंगा।

लीला—तब तो मेरा घर में रहना भी मुश्किल हो जायेगा।

सीतासरन—बला से अलग ही रहेंगे !

लीला—मैं मर भी लाऊं तो भी अलग रहूं । वह जो कुछ कहती सुनती है, अपनी समझ से मेरे भले ही के लिए कहती-सुनती है। उन्हें मुझसे कोई दुश्मनी थोडे ही है। हां, हमें उनकी बातें अच्छी न लगें, यह दूसरी बात है।उन्होंने खुद वह सब कष्ट झेले है, जो वह मुझे झेलवाना चाहती है। उनके स्वास्थ्य पर उन कष्टो का जरा भी असर नही पडा। वह इस ६५ वर्ष की उम्र में मुझसे कहीं टांठी है। फिर उन्हें कैसे मालूम हो कि इन कष्टों से स्वास्थ्य बिगड सकता है।

सीतासरन ने उसके मुरझाये हुए मुख की ओर करुणा नेत्रों से देख कर कहा—तुम्हें इस घर में आकर बहुत दु:ख सहना पडा। यह घर तुम्हारे योग्य न था। तुमने पूर्व जन्म में जरूर कोई पाप किया होगा।

लीला ने पति के हाथो से खेलते हुए कहा—यहां न आती तो तुम्हारा प्रेम कैसे पाती ?

3

पांच साल गुजर गये। लीला दो बच्चों की मां हो गयी। एक लडका था, दूसरी लडकी । लडके का नाम जानकीसरन रखा गया और लडकी का नाम कामिनी। दोनो बच्चे घर को गुलजार किये रहते थे। लडकी लडकी दादा से हिली थी, लडका दादी से । दोनों शोख और शरीर थें। गाली दे बैठना, मुंह चिढा देना तो उनके लिए मामूली बात थी। दिन-भर खाते और आये दिन बीमार पडे रहते। लीला ने खुद सभी कष्ट सह लिये थे पर बच्चों में बुरी आदतों का पडना उसे बहुत बुरा मालूम होता था; किन्तु उसकी कौन सुनता था। बच्चों की माता होकर उसकी अब गणना ही न रही थी। जो कुछ थे बच्चे थे, वह कुछ न थी। उसे किसी बच्चे को डाटने का भी अधिकार न था, सांस फाड खाती थी।

सबसे बडी आपत्ति यह थी कि उसका स्वास्थ्य अब और भी खराब हो गया था। प्रसब काल में उसे वे भी अत्याचार सहने पडे जो अज्ञान, मूर्खता और अंध विश्वास ने सौर की रक्षा के लिए गढ रखे है। उस काल-कोठरी में, जहाँ न हवा का गुजर था, न प्रकाश का, न सफाई का, चारों और दुर्गन्ध, और सील और गन्दगी भरी हुई थी, उसका कोमल शरीर सूख गया। एक बार जो कसर रह गयी वह दूसरी बार पूरी हो गयी। चेहरा पीला पड गया, आंखे घंस गयीं। ऐसा मालूम होता, बदन में खून ही नही रहा। सूरत ही बदल गयी।

गर्मियों के दिन थे। एक तरफ आम पके, दूसरी तरफ खरबूजे । इन दोनो फलो की ऐसी अच्छी फसल कभी न हुई थी अबकी इनमें इतनी मिठास न जाने कहा से आयी थी कि कितना ही खाओ मन न भरे। संतसरन के इलाके से आम औरी खरबूजे के टोकरे भरे चले आते थे। सारा घर खूब उछल-उछल खाताथा। बाबू साहब पुरानी हड्डी के आदमी थे। सबेरे एक सैकडे आमों का नाश्ता करते, फिर पसेरी-भर खरबूज चट कर जाते। मालकिन उनसे पीछे रहने वाली न थी। उन्होने तो एक वक्त का भोजन ही बन्द कर दिया। अनाज सडने वाली चीज नही। आज नही कल खर्च हो जायेगा। आम और खरबूजे तो एक दिन भी नही ठहर सकते। शुदनी थी और क्या। यों ही हर साल दोनों चीजों की रेल-पेल होती थी; पर किसी को कभी कोई शिकायत न होती थी। कभी पेट में गिरानी मालूम हुई तो हड की फंकी मार ली। एक दिन बाबू संतसरन के पेट में मीठा-मीठा दर्द होने लगा। आपने उसकी परवाह न की । आम खाने बैठ गये। सैकड़ा पूरा करके उठे ही थे कि कै हुई । गिर पडे फिर तो तिल-तिल करके पर कै और दस्त होने लगे। हैजा हो गया। शहर के डाक्टर बुलाये गये, लेकिन आने के पहले ही बाबू साहब चल बसे थे। रोना-पीटना मच गया। संध्या होते-होते लाश घर से निकली। लोग दाह-क्रिया करके आधी रात को लौटे तो मालकिन को भी कै दस्त हो रहे थे। फिर दौड धूप शुरू हुई; लेकिन सूर्य निकलते-निकलते वह भी सिधार गयी। स्त्री-पुरूष जीवनपर्यंत एक दिन के लिए भी अलग न हुए थे। संसार से भी साथ ही साथ गये, सूर्यास्त के समय पति ने प्रस्थान किया, सूर्योदय के समय पत्नी ने ।

लेकिन मुशीबत का अभी अंत न हुआ था। लीला तो संस्कार की तैयारियों मे लगी थी; मकान की सफाई की तरफ किसी ने ध्यान न दिया। तीसरे दिन दोनो बच्चे दादा-दादी के लिए रोते-रोते बैठक में जा पंहुचे। वहां एक आले का खरबूजज कटा हुआ पडा था; दो-तीन कलमी आम भी रखे थे। इन पर मक्खियां भिनक रही थीं। जानकी ने एक तिपाई पर चढ कर दोनों चीजें उतार लीं और दोंनों ने मिलकर खाई। शाम होत-होते दोनों को हैजा हो गया और दोंनो मां-बाप को रोता छोड चल बसे। घर में अंधेरा हो गया। तीन दिन पहले जहां चारों तरफ चहल-पहल थी, वहां अब सन्नाटा छाया हुआ था, किसी के रोने की आवाज भी सुनायी न देती थी। रोता ही कौन ? ले-दे के कुल दो प्राणी रह गये थे। और उन्हें रोने की सुधि न थी।

4

लीला का स्वास्थ्य पहले भी कुछ अच्छा न था, अब तो वह और भी बेजान हो गयी। उठने-बैठने की शक्ति भी न रही। हरदम खोयी सी रहती, न कपडे-लत्ते की सुधि थी, न खाने-पीने की । उसे न घर से वास्ता था, न बाहर से । जहां बैठती, वही बैठी रह जाती। महीनों कपडे न बदलती, सिर में तेल न डालती बच्चे ही उसके प्राणो के आधार थे। जब वही न रहे तो मरना और जीना बराबर था। रात-दिन यही मनाया करती कि भगवान् यहां से ले चलो । सुख-दु:ख सब भुगत चुकी। अब सुख की लालसा नही है; लेकिन बुलाने से मौत किसी को आयी है ?

सीतासरन भी पहले तो बहुत रोया-धोया; यहां तक कि घर छोडकर भागा जाता था; लेकिन ज्यों-ज्यो दिन गुजरते थे बच्चों का शोक उसके दिल से मिटता था; संतान का दु:ख तो कुछ माता ही को होता है। धीरे-धीरे उसका जी संभल गया। पहले की भाँति मित्रों के साथ हंसी-दिल्लगी होने लगी। यारों ने और भी चंग पर चढाया । अब घर का मालिक था, जो चाहे कर सकता था, कोई

उसका हाथ रोकने वाला नही था। सैर'-सपाटे करने लगा। तो लीला को रोते देख उसकी आंखे सजग हो जाती थीं, कहां अब उसे उदास और शोक-मग्न देखकर झुंझला उठता। जिंदगी रोने ही के लिए तो नही है। ईश्वर ने लडके दिये थे, ईश्वर ने ही छीन लिये। क्या लडको के पीछे प्राण दे देना होगा ? लीला यह बातें सुनकर भौंचक रह जाती। पिता के मुंह से ऐसे शब्द निकल सकते है। संसार में ऐसे प्राणी भी है।

होली के दिन थे। मर्दाना में गाना-बजाना हो रहा था। मित्रों की दावत का भी सामान किया गया था । अंदर लीला जमींन पर पडी हुई रो रही थी त्याहोर के दिन उसे रोते ही कटते थें आज बच्चे बच्चे होते तो अच्छे- अच्छे कपडे पहने कैसे उछलते फिरते! वही न रहे तो कहां की तीज और कहां के त्योहार।

सहसा सीतासरन ने आकर कहा – क्या दिन भर रोती ही रहोगी ? जरा कपडे तो बदल डालो , आदमी बन जाओ । यह क्या तुमने अपनी गत बना रखी है ?

लीला—तुम जाओ अपनी महफिल मे बैठो, तुम्हे मेरी क्या फिक्र पडी है।

सीतासरन—क्या दुनिया में और किसी के लडके नही मरते ? तुम्हारे ही सिर पर मुसीबत आयी है ?

लीला—यह बात कौन नही जानता। अपना-अपना दिल ही तो है। उस पर किसी का बस है ?

सीतासरन मेरे साथ भी तो तुम्हारा कुछ कर्तव्य है ?

लीला ने कुतूहल से पति को देखा, मानो उसका आशय नही समझी। फिर मुंह फेर कर रोने लगी।

सीतासरन – मै अब इस मनहूसत का अन्त कर देना चाहता हूं। अगर तुम्हारा अपने दिल पर काबू नही है तो मेरा भी अपने दिल पर काबू नही है। मैं अब जिंदगी – भर मातम नही मना सकता।

लीला—तुम रंग-राग मनाते हो, मैं तुम्हें मना तो नही करती ! मैं रोती हूं तो क्यूं नही रोने देते।
सीतासरन—मेरा घर रोने के लिए नही है ?

लीला—अच्छी बात है, तुम्हारे घर में न रोउंगी।

5

लीला ने देखा, मेरे स्वामी मेरे हाथ से निकले जा रहे है। उन पर विषय का भूत सवार हो गया है और कोई समझाने वाला नहीं। वह अपने होश मे नही है। मैं क्या करुं, अगर मैं चली जाती हूं तो थोडे ही दिनो में सारा ही घर मिट्टी में मिल जाएगा और इनका वही हाल होगा जो स्वार्थी मित्रो के चुंगल में फंसे हुए नौजवान रईसों का होता है। कोई कुलटा घर में आ जाएगी और इनका सर्वनाश कर देगी। ईश्वा ! मैं क्या करूं ? अगर इन्हें कोई बीमारी हो जाती तो क्या मैं उस दशा मे इन्हें छोडकर चली जाती ? कभी नही। मैं तन मन से इनकी सेवा-सुश्रूषा करती, ईश्वर से प्रार्थना करती, देवताओं की मनौतियां करती। माना इन्हें शारीरिक रोग नही है, लेकिन मानसिक रोग अवश्य है। आदमी रोने की जगह हंसे और हंसने की जगह रोये, उसके दीवाने होने में क्या संदेह है ! मेरे चले जाने से इनका सर्वनाश हो जायेगा। इन्हें बचाना मेरा धर्म है।

हां, मुझें अपना शोक भूल जाना होगा। रोऊंगी, रोना तो तकदीर में लिखा ही है—रोऊंगी, लेकिन हंस-हंस कर । अपने भाग्य से लडूंगी। जो जाते रहे उनके नाम के सिवा और कर ही क्या सकतीहूं, लेकिन जो है उसे न जाने दूंगी। आ, ऐ टूटे हुए ह्रदय ! आज तेरे टुकडों को जमा करके एक समाधि बनाऊं और अपने

शोक को उसके हवाले कर दूं। ओ रोने वाली आंखों, आओ, मेरे आसुंओं को अपनी विहंसित छटा में छिपा लो। आओ, मेरे आभूषणों, मैंने बहुत दिनों तक तुम्हारा अपमान किया है, मेरा अपराध क्षमा करो। तुम मेरे भले दिनो के साक्षी हो, तुमने मेरे साथ बहुत विहार किए है, अब इस संकट में मेरा साथ दो ; मगर देखो दगा न करना ; मेरे भेदों को छिपाए रखना।

पिछले पहर को पहफिल में सन्नाटा हो गया। हू-हा की आवाजें बंद हो गयी। लीला नेसोचा क्या लोग कही चले गये, या सो गये ? एकाएक सन्नाटा क्यों छा गया। जाकर दहलीज में खडी हो गयी और बैठक में झांककर देखा, सारी देह में एक ज्वाला-सी दौड गयी। मित्र लोग विदा हो गये थे। समाजियो का पता न था। केवल एक रमणी मसनद पर लेटी हुई थी और सीतासरन सामने झुका हुआ उससे बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहा था। दोनों के चेहरों और आंखो से उनके मन के भाव साफ झलक रहे थे। एक की आंखों में अनुराग था, दूसरी की आंखो में कटाक्ष ! एक भोला-भोला ह्रदय एक मायाविनी रमणी के हाथों लुटा जाता था। लीला की सम्पत्ति को उसकी आंखों के सामने एक छलिनी चुराये जाती थी। लीला को ऐसा क्रोध आया कि इसी समय चलकर इस कुल्टा को आडे हाथों लूं, ऐसा दुत्कारूं वह भी याद करें, खडे-,खडे निकाल दूं। वह पत्नी भाव जो बहुत दिनो से सो रहा था, जाग उठा और विकल करने लगा। पर उसने जब्त किया। वेग में दौडती हुई तृष्णाएं अक्समात् न रोकी जा सकती थी। वह उलटे पांव भीतर लौट आयी और मन को शांत करके सोचने लगी—वह रूप रंग में, हाव-भाव में, नखरे-तिल्ले में उस दुष्टा की बराबरी नही कर सकती। बिलकुल चांद का टुकडा है, अंग-अंग में स्फूर्ति भरी हुई है, पोर-पोर में मद छलक रहा है। उसकी आंखों में कितनी तृष्णा है। तृष्णा नही, बल्कि ज्वाला ! लीला उसी वक्त आइने के सामने गयी । आज कई महीनो के बाद उसने आइने में अपनी सूरत देखी। उस मुख से एक आह निकल गयी। शोक न उसकी कायापलट कर दी थी। उस रमणी के सामने वह ऐसी लगती थी जैसे गुलाब के सामने जूही का फूल

सीतासरन का खुमार शाम को टूटा । आखें खुलीं तो सामने लीला को खडे मुस्कराते देखा। उसकी अनोखी छवि आंखों में समा गई। ऐसे खुश हुए मानो बहुत दिनो के वियोग के बाद उससे भेंट हुई हो। उसे क्या मालूम था कि यह रुप भरने के लिए कितने आंसू बहाये है; कैशों मे यह फूल गूंथने के पहले आंखों में कितने मोती पिरोये है। उन्होनें एक नवीन प्रेमोत्साह से उठकर उसे गले लगा लिया और मुस्कराकर बोले—आज तो तुमने बडे-बडे शास्त्र सजा रखे है, कहां भागूं ?

लीला ने अपने ह्रदय की ओर उंगली दिखकर कहा –-यहा आ बैठो बहुत भागे फिरते हो, अब तुम्हें बांधकर रखूगीं । बाग की बहार का आनंद तो उठा चुके, अब इस अंधेरी कोठरी को भी देख लो।

सीतासरन ने जज्जित होकर कहा—उसे अंधेरी कोठरी मत कहो लीला वह प्रेम का मानसरोवर है !

इतने मे बाहर से किसी मित्र के आने की खबर आयी। सीताराम चलने लगे तो लीला ने हाथ उनका पकडकर हाथ कहा—मैं न जाने दूंगी।

सीतासरन-- अभी आता हूं।

लीला—मुझे डर है कहीं तुम चले न जाओ।

सीतासरन बाहर आये तो मित्र महाशय बोले –आज दिन भर सोते हो क्या ? बहुत खुश नजर आते हो। इस वक्त तो वहां चलने की ठहरी थी न ? तुम्हारी राह देख रही है।

सीतासरन—चलने को तैयार हूं, लेकिन लीला जाने नहीं देगीं।

मित्र—निरे गाउदी ही रहे। आ गए फिर बीवी के पंजे में ! फिर किस बिरते पर गरमाये थे ?

सीतासरन—लीला ने घर से निकाल दिया था, तब आश्रय ढूढता – फिरता था। अब उसने द्वार खोल दिये है और खडी बुला रही है।

मित्र—आज वह आनंद कहां ? घर को लाख सजाओ तो क्या बाग हो जायेगा ?

सीतासरन—भई, घर बाग नही हो सकता, पर स्वर्ग हो सकता है। मुझे इस वक्त अपनी क्षद्रता पर जितनी लज्जा आ रही है, वह मैं ही जानता हूं। जिस संतान शोक में उसने अपने शरीर को घुला डाला और अपने रूप-लावण्य को मिटा दिया उसी शोक को केवल मेरा एक इशारा पाकर उसने भुला दिया। ऐसा भुला दिया मानो कभी शोक हुआ ही नही ! मैं जानता हूं वह बडे से बडे कष्ट सह सकती है। मेरी रक्षा उसके लिए आवश्यक है। जब अपनी उदासीनता के कारण उसने मेरी दशा बिगडते देखी तो अपना सारा शोक भूल गयी। आज मैंने उसे अपने आभूषण पहनकर मुस्कराते हुंए देखा तो मेरी आत्मा पुलकित हो उठी । मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि वह स्वर्ग की देवी है और केवल मुझ जैसे दुर्बल प्राणी की रक्षा करने भेजी गयी है। मैने उसे कठोर शब्द कहे, वे अगर अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी मिल सकते, तो लौटा लेता। लीला वास्तव में स्वर्ग की देवी है!

***

आधार

सारे गाँव मे मथुरा का सा गठीला जवान न था। कोई बीस बरस की उमर थी । मसें भीग रही थी। गउएं चराता, दूध पीता, कसरत करता, कुश्ती लडता था और सारे दिन बांसुरी बजाता हाट मे विचरता था। ब्याह हो गया था, पर अभी कोई बाल-बच्चा न था। घर में कई हल की खेती थी, कई छोटे-बडे भाई थे। वे सब मिलचुलकर खेती-बारी करते थे। मथुरा पर सारे गाँव को गर्व था, जब उसे जाँघिये-लंगोटे, नाल या मुग्दर के लिए रूपये-पैसे की जरूरत पडती तो तुरन्त दे दिये जाते थे। सारे घर की यही अभिलाषा थी कि मथुरा पहलवान हो जाय और अखाडे मे अपने सवाये को पछाडे। इस लाड –प्यार से मथुरा जरा टर्रा हो गया था। गायें किसी के खेत मे पडी है और आप अखाडे मे दंड लगा रहा है। कोई उलाहना देता तो उसकी त्योरियां बदल जाती। गरज कर कहता, जो मन मे आये कर लो, मथुरा तो अखाडा छोडकर हांकने न जायेंगे ! पर उसका डील-डौल देखकर किसी को उससे उलझने की हिम्मत न पडती । लोग गम खा जाते

गर्मियो के दिन थे, ताल-तलैया सूखी पडी थी। जोरों की लू चलने लगी थी। गाँव में कहीं से एक सांड आ निकला और गउओं के साथ हो लिया। सारे दिन गउओं के साथ रहता, रात को बस्ती में घुस आता और खूंटो से बंधे बैलो को सींगों से मारता। कभी-किसी की गीली दीवार को सींगो से खोद डालता, घर का कूडा सींगो से उडाता। कई किसानो ने साग-भाजी लगा रखी थी, सारे दिन सींचते-सींचते मरते थे। यह सांड रात को उन हरे-भरे खेतों में पहुंच जाता और खेत का खेत तबाह कर देता । लोग उसे डंडों से मारते, गाँव के बाहर भगा आते, लेकिन जरा देर में गायों में पहुंच जाता। किसी की अक्ल काम न करती थी कि इस संकट को कैसे टाला जाय। मथुरा का घर गांव के बीच मे था, इसलिए उसके खेतो को सांड से कोई हानि न पहुंचती थी। गांव में उपद्रव मचा हुआ था और मथुरा को जरा भी चिन्ता न थी।

आखिर जब धैर्य का अंतिम बंधन टूट गया तो एक दिन लोगों ने जाकर मथुरा को घेरा और बौले—भाई, कहो तो गांव में रहें, कहीं तो निकल जाएं । जब खेती ही न बचेगी तो रहकर क्या करेगें .? तुम्हारी गायों के पीछे हमारा सत्यानाश हुआ जाता है, और तुम अपने रंग में मस्त हो। अगर भगवान ने तुम्हें बल दिया है तो इससे दूसरो की रक्षा करनी चाहिए, यह नही कि सबको पीस कर पी जाओ । सांड तुम्हारी गायों के कारण आता है और उसे भगाना तुम्हारा काम है ; लेकिन तुम कानो में तेल डाले बैठे हो, मानो तुमसे कुछ मतलब ही नही।

मथुरा को उनकी दशा पर दया आयी। बलवान मनुष्य प्राय: दयालु होता है। बोला—अच्छा जाओ, हम आज सांड को भगा देंगे।

एक आदमी ने कहा—दूर तक भगाना, नही तो फिर लोट आयेगा।

मथुरा ने कंधे पर लाठी रखते हुए उत्तर दिया—अब लौटकर न आयेगा।

2

चिलचिलाती दोपहरी थी। मथुरा सांड को भगाये लिए जाता था। दोंनो पसीने से तर थे। सांड बार-बार गांव की ओर घूमने की चेष्टा करता, लेकिन मथुरा उसका इरादा ताडकर दूर ही से उसकी राह छेंक लेता। सांड क्रोध से उन्मत्त होकर कभी-कभी पीछे मुडकर मथुरा पर तोड करना चाहता लेकिन उस समय मथुरा सामाना बचाकर बगल से ताबड-तोड इतनी लाठियां जमाता कि सांड को फिर भागना पडता कभी दोनों अरहर के खेतो में दौडते, कभी झाडियों में । अरहर की खूटियों से मथुरा के पांव लहू-लुहान हो रहे थे, झाडियों में धोती फट गई थी, पर उसे इस समय सांड का पीछा करने के सिवा और कोई सुध न थी। गांव पर गांव आते थे और निकल जाते थे। मथुरा ने निश्चय कर लिया कि इसे नदी पार भगाये बिना दम न लूंगा। उसका कंठ सूख गया था और आंखें

लाल हो गयी थी, रोम-रोम से चिनगारियां सी निकल रही थी, दम उखड गया था ; लेकिन वह एक क्षण के लिए भी दम न लेता था। दो ढाई घंटो के बाद जाकर नदी आयी। यही हार-जीत का फैसला होने वाला था, यही से दोनों खिलाडियों को अपने दांव-पेंच के जौहर दिखाने थे। सांड सोचता था, अगर नदी में उतर गया तो यह मार ही डालेगा, एक बार जान लडा कर लौटने की कोशिश करनी चाहिए। मथुरा सोचता था, अगर वह लौट पडा तो इतनी मेहनत व्यर्थ हो जाएगी और गांव के लोग मेरी हंसी उडायेगें। दोनों अपने – अपने घात में थे। सांड ने बहुत चाहा कि तेज दौडकर आगे निकल जाऊं और वहां से पीछे को फिरूं, पर मथुरा ने उसे मुडने का मौका न दिया। उसकी जान इस वक्त सुई की नोक पर थी, एक हाथ भी चूका और प्राण भी गए, जरा पैर फिसला और फिर उठना नशीब न होगा। आखिर मनुष्य ने पशु पर विजय पायी और सांड को नदी में घुसने के सिवाय और कोई उपाय न सूझा। मथुरा भी उसके पीछे नदी मे पैठ गया और इतने डंडे लगाये कि उसकी लाठी टूट गयी।

3

अब मथुरा को जोरो से प्यास लगी। उसने नदी में मुंह लगा दिया और इस तरह हौंक-हौंक कर पीने लगा मानो सारी नदी पी जाएगा। उसे अपने जीवन में कभी पानी इतना अच्छा न लगा था और न कभी उसने इतना पानी पीया था। मालूम नही, पांच सेर पी गया या दस सेर लेकिन पानी गरम था, प्यास न बुंझी; जरा देर में फिर नदी में मुंह लगा दिया और इतना पानी पीया कि पेट में सांस लेने की जगह भी न रही। तब गीली धोती कंधे पर डालकर घर की ओर चल दिया।

लेकिन दस की पांच पग चला होगा कि पेट में मीठा-मीठा दर्द होने लगा। उसने सोचा, दौड कर पानी पीने से ऐसा दर्द अकसर हो जाता है, जरा देर में दूर हो जाएगा। लेकिन दर्द बढने लगा और मथुरा का आगे जाना कठिन हो गया। वह एक पेड के नीचे बैठ गया और दर्द से बैचेन होकर जमीन पर लोटने लगा। कभी पेट को दबाता, कभी खडा हो जाता कभी बैठ जाता, पर दर्द

बढता ही जाता था। अन्त में उसने जोर-जोर से कराहना और रोना शुरू किया; पर वहां कौन बैठा था जो, उसकी खबर लेता। दूर तक कोई गांव नही, न आदमी न आदमजात। बेचारा दोपहरी के सन्नाटे में तडप-तडप कर मर गया। हम कडे से कडा घाव सह सकते है लेकिन जरा सा-भी व्यतिक्रम नही सह सकते। वही देव का सा जवान जो कोसो तक सांड को भगाता चला आया था, तत्वों के विरोध का एक वार भी न सह सका। कौन जानता था कि यह दौड उसके लिए मौत की दौड होगी ! कौन जानता था कि मौत ही सांड का रूप धरकर उसे यों नचा रही है। कौरन जानता था कि जल जिसके बिना उसके प्राण ओठों पर आ रहे थे, उसके लिए विष का काम करेगा।

संध्या समय उसके घरवाले उसे ढूंढते हुए आये। देखा तो वह अनंत विश्राम में मग्न था।

4

एक महीना गुजर गया। गांववाले अपने काम-धंधे में लगे । घरवालों ने रो-धो कर सब्र किया; पर अभागिनी विधवा के आंसू कैसे पुंछते । वह हरदम रोती रहती। आंखे चांहे बन्द भी हो जाती, पर ह्रदय नित्य रोता रहता था। इस घर में अब कैसे निर्वाह होगा? किस आधार पर जिऊंगी? अपने लिए जीना या तो महात्माओं को आता है या लम्पटों ही को । अनूपा को यह कला क्या मालूम? उसके लिए तो जीवन का एक आधार चाहिए था, जिसे वह अपना सर्वस्व समझे, जिसके लिए वह लिये, जिस पर वह घमंड करे । घरवालों को यह गवारा न था कि वह कोई दूसरा घर करे। इसमें बदनामी थी। इसके सिवाय ऐसी सुशील, घर के कामों में कुशल, लेन-देन के मामलो में इतनी चतुर और रंग रूप की ऐसी सराहनीय स्त्री का किसी दूसरे के घर पड जाना ही उन्हें असह्रय था। उधर अनूपा के मैककवाले एक जगह बातचीत पक्की कर रहे थे। जब सब बातें तय हो गयी, तो एक दिन अनूपा का भाई उसे विदा कराने आ पहुंचा।

अब तो घर में खलबली मची। इधर कहा गया, हम विदा न करेगें । भाई ने कहा, हम बिना विदा कराये मानेंगे नही। गांव के आदमी जमा हो गये, पंचायत होने लगी। यह निश्चय हुआ कि अनूपा पर छोड दिया जाय, जी चाहे रहे। यहां वालो को विश्वास था कि अनूपा इतनी जल्द दूसरा घर करने को राजी न होगी, दो-चार बार ऐसा कह भी चुकी थी। लेकिन उस वक्त जो पूछा गया तो वह जाने को तैयार थी। आखिर उसकी विदाई का सामान होने लगा। डोली आ गई। गांव-भर की स्त्रिया उसे देखने आयीं। अनूपा उठ कर अपनी सांस के पैरो में गिर पडी और हाथ जोडकर बोली—अम्मा, कहा-सुनाद माफ करना। जी में तो था कि इसी घर में पडी रहूं, पर भगवान को मंजूर नही है।

यह कहते-कहते उसकी जबान बन्द हो गई।

सास करूणा से विह्वल हो उठी। बोली—बेटी, जहां जाओं वहां सुखी रहो। हमारे भाग्य ही फूट गये नही तो क्यों तुम्हें इस घर से जाना पडता। भगवान का दिया और सब कुछ है, पर उन्होने जो नही दिया उसमें अपना क्या बस ; बस आज तुम्हारा देवर सयाना होता तो बिगडी बात बन जाती। तुम्हारे मन में बैठे तो इसी को अपना समझो : पालो-पोसो बडा हो जायेगा तो सगाई कर दूंगी।

यह कहकर उसने अपने सबसे छोटे लडके वासुदेव से पूछा—क्यों रे ! भौजाई से शादी करेगा?

वासुदेव की उम्र पांच साल से अधिक न थी। अबकी उसका ब्याह होने वाला था। बातचीत हो चुकी थी। बोला—तब तो दूसरे के घर न जायगी न?

मा—नही, जब तेरे साथ ब्याह हो जायगी तो क्यों जायगी?

वासुदेव-- तब मैं करूंगा

मां—अच्छा, उससे पूछ, तुझसे ब्याह करेगी।

वासुदेव अनूप की गोद में जा बैठा और शरमाता हुआ बोला—हमसे ब्याह करोगी?

यह कह कर वह हंसने लगा; लेकिन अनूप की आंखें डबडबा गयीं, वासुदेव को छाती से लगाते हुए बोली ---अम्मा, दिल से कहती हो?

सास—भगवान् जानते है !

अनूपा—आज यह मेरे हो गये?

सास—हां सारा गांव देख रहा है ।

अनूपा—तो भैया से कहला भैजो, घर जायें, मैं उनके साथ न जाऊंगी।

अनूपा को जीवन के लिए आधार की जरूरत थी। वह आधार मिल गया। सेवा मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। सेवा ही उस के जीवन का आधार है।

अनूपा ने वासुदेव को लालन-पोषण शुरू किया। उबटन और तैल लगाती, दूध-रोटी मल-मल के खिलाती। आप तालाब नहाने जाती तो उसे भी नहलाती। खेत में जाती तो उसे भी साथ ले जाती। थौडे की दिनों में उससे हिल-मिल गया कि एक क्षण भी उसे न छोडता। मां को भूल गया। कुछ खाने को जी चाहता तो अनूपा से मांगता, खेल में मार खाता तो रोता हुआ अनूपा के पास आता। अनूपा ही उसे सुलाती, अनूपा ही जगाती, बीमार हो तो अनूपा ही गोद में लेकर बदलू वैध के घर जाती, और दवायें पिलाती।

गांव के स्त्री-पुरूष उसकी यह प्रेम तपस्या देखते और दांतो उंगली दबाते। पहले बिरले ही किसी को उस पर विश्वास था। लोग समझते थे, साल-दो-साल में

इसका जी ऊब जाएगा और किसी तरफ का रास्ता लेगी; इस दुधमुंहे बालक के नाम कब तक बैठी रहेगी; लेकिन यह सारी आशंकाएं निमूर्ल निकलीं। अनूपा को किसी ने अपने व्रत से विचलित होते न देखा। जिस हृदय मे सेवा को स्रोत बह रहा हो—स्वाधीन सेवा का—उसमें वासनाओं के लिए कहां स्थान ? वासना का वार निर्मम, आशाहीन, आधारहीन प्राणियों पर ही होता है चोर की अंधेरे में ही चलती है, उजाले में नही।

वासुदेव को भी कसरत का शोक था। उसकी शक्ल सूरत मथुरा से मिलती-जुलती थी, डील-डौल भी वैसा ही था। उसने फिर अखाडा जगाया। और उसकी बांसुरी की तानें फिर खेतों में गूजने लगीं।

इस भाँति १३ बरस गुजर गये। वासुदेव और अनूपा में सगाई की तैयारी होने लगीं।

5

लेकिन अब अनूपा वह अनूपा न थी, जिसने १४ वर्ष पहले वासुदेव को पति भाव से देखा था, अब उस भाव का स्थान मातृभाव ने लिया था। इधर कुछ दिनों से वह एक गहरे सोच में डूबी रहती थी। सगाई के दिन ज्यो-ज्यों निकट आते थे, उसका दिल बैठा जाता था। अपने जीवन में इतने बडे परिवर्तन की कल्पना ही से उसका कलेजा दहक उठता था। जिसे बालक की भाँति पाला-पोसा, उसे पति बनाते हुए, लज्जा से उसका मुंख लाल हो जाता था।

द्वार पर नगाडा बज रहा था। बिरादरी के लोग जमा थे। घर में गाना हो रहा था! आज सगाई की तिथि थी :

सहसा अनूपा ने जा कर सास से कहा—अम्मां मै तो लाज के मारे मरी जा रही हूं।

सास ने भौंचक्की हो कर पूछा—क्यों बेटी, क्या है?

अनूपा—मैं सगाई न करूंगी।

सास—कैसी बात करती है बेटी? सारी तैयारी हो गयी। लोग सुनेंगे तो क्या कहेगें?

अनूपा—जो चाहे कहें, जिनके नाम पर १४ वर्ष बैठी रही उसी के नाम पर अब भी बैठी रहूंगी। मैंने समझा था मरद के बिना औरत से रहा न जाता होगा। मेरी तो भगवान ने इज्जत आबरू निबाह दी। जब नयी उम्र के दिन कट गये तो अब कौन चिन्ता है ! वासुदेव की सगाई कोई लडकी खोजकर कर दो। जैसे अब तक उसे पाला, उसी तरह अब उसके बाल-बच्चों को पालूंगी।

***

एक आंच की कसर

सारे नगर में महाशय यशोदानन्द का बखान हो रहा था। नगर ही में नही, समस्त प्रान्त में उनकी कीर्ति की जाती थी, समाचार पत्रों में टिप्पणियां हो रही थी, मित्रो से प्रशंसापूर्ण पत्रों का तांता लगा हुआ था। समाज-सेवा इसको कहते है! उन्नत विचार के लोग ऐसा ही करते है। महाशय जी ने शिक्षित समुदाय का मुख उज्जवल कर दिया। अब कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि हमारे नेता केवल बात के धनी है, काम के धनी नही है! महाशय जी चाहते तो अपने पुत्र के लिए उन्हें कम से कम बीज हतार रूपये दहेज में मिलते, उस पर खुशामद घाते में ! मगर लाला साहब ने सिद्वांत के सामने धन की रत्ती बराबर परवा न की और अपने पुत्र का विवाह बिना एक पाई दहेज लिए स्वीकार किया। वाह ! वाह ! हिम्मत हो तो ऐसी हो, सिद्वांत प्रेम हो तो ऐसा हो, आदर्श-पालन हो तो ऐसा हो । वाह रे सच्चे वीर, अपनी माता के सच्चे सपूत, तूने वह कर दिखाया जो कभी किसी ने किया था। हम बडे गर्व से तेरे सामने मस्तक नवाते है।

महाशय यशोदानन्द के दो पुत्र थे। बडा लडका पढ लिख कर फाजिल हो चुका था। उसी का विवाह तय हो रहा था और हम देख चुके है, बिना कुछ दहेज लिये।

आज का तिलक था। शाहजहांपुर स्वामीदयाल तिलक ले कर आने वाले थे। शहर के गणमान्य सज्जनों को निमन्त्रण दे दिये गये थे। वे लोग जमा हो गये थे। महफिल सजी7 हुई थी। एक प्रवीण सितारिया अपना कौशल दिखाकर लोगो को मुग्ध कर रहा था। दावत को सामान भी तैयार था ? मित्रगण यशोदानन्द को बधाईयां दे रहे थे।

एक महाशय बोले-तुमने तो कमाल कर दिया !

दूसरे-कमाल ! यह कहिए कि झण्डे गाड दिये। अब तक जिसे देखा मंच पर व्याख्यान झाडते ही देखा। जब काम करने का अवसर आता था तो लोग दुम लगा लेते थे।

तीसरे-कैसे-कैसे बहाने गढे जाते है-साहब हमें तो दहेज से सख्त नफरत है यह मेरे सिद्वांत के विरुद्व है, पर क्या करुं क्या, बच्चे की अम्मीजान नहीं मानती। कोई अपने बाप पर फेंकता है, कोई और किसी खर्राट पर।

चौथे-अजी, कितने तो ऐसे बेहया है जो साफ-साफ कह देते है कि हमने लडके को शिक्षा - दीक्षा में जितना खर्च किया है, वह हमें मिलना चाहिए। मानो उन्होने यह रूपये उन्होन किसी बैंक में जमा किये थे।

पांचवें-खूब समझ रहा हूं, आप लोग मुझ पर छींटे उडा रहे है।

इसमें लडके वालों का ही सारा दोष है या लडकी वालों का भी कुछ है।

पहले-लडकी वालों का क्या दोष है सिवा इसके कि वह लडकी का बाप है।

दूसरे-सारा दोष ईश्वर का जिसने लडकियां पैदा कीं । क्यों?

पांचवे-मैं यह नही कहता। न सारा दोष लडकी वालों का हैं, न सारा दोष लडके वालों का। दोनों की दोषी है। अगर लडकी वाला कुछ न दे तो उसे यह शिकायत करने का कोई अधिकार नही है कि डाल क्यों नही लायें, सुंदर जोडे क्यों नही लाये, बाजे-गाजे पर धूमधाम के साथ क्यों नही आये? बताइए !

चौथे-हां, आपका यह प्रश्न गौर करने लायक है। मेरी समझ में तो ऐसी दशा में लडकें के पिता से यह शिकायत न होनी चाहिए।

पांचवें---तो यों कहिए कि दहेज की प्रथा के साथ ही डाल, गहनें और जोडो की प्रथा भी त्याज्य है। केवल दहेज को मिटाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

यशोदानन्द----यह भी Lame excuse[1] है। मैंने दहेज नही लिया है।, लेकिन क्या डाल-गहने ने ले जाऊंगा।

पहले---महाशय आपकी बात निराली है। आप अपनी गिनती हम दुनियां वालों के साथ क्यों करते हैं ? आपका स्थान तो देवताओं के साथ है।

दूसरा----20 हजार की रकम छोड दी? क्या बात है।

यशोदानन्द---मेरा तो यह निश्चय है कि हमें सदैव principles[2] पर स्थिर रहना चाहिए। principle[2] के सामने money[3] की कोई value[4] नही है। दहेज की कुप्रथा पर मैंने खुद कोई व्याख्यान नही दिया, शायद कोई नोट तक नही लिखा। हां, conference[5] में इस प्रस्ताव को second[6] कर चुका हूं। मैं उसे तोडना भी चाहूं तो आत्मा न तोडने देगी। मैं सत्य कहता हूं, यह रूपये लूं तो मुझे इतनी मानसिक वेदना होगी कि शायद मैं इस आघात स बच ही न सकूं।

पांचवें---- अब की conference[5] आपको सभापति न बनाये तो उसका घोर अन्याय है।

यशोदानन्द-मैंने अपनी duty[7] कर दीउसका recognition[8] हो या न हो, मुझे इसकी परवाह नही।

---

[1] थोथी दलील
[2] सिद्धांतों
[3] धन
[4] मूल्य
[5] सभा
[6] अनुमोदन
[7] कर्तव्य
[8] कदर

इतने में खबर हुई कि महाशय स्वामीदयाल आ पंहुचे । लोग उनका अभिवादन करने को तैयार हुए, उन्हें मसनद पर ला बिठाया और तिलक का संस्कार आरंम्भ हो गया। स्वामीदयाल ने एक ढाक के पत्तल पर नारियल, सुपारी, चावल पान आदि वस्तुएं वर के सामने रखीं। ब्राह्मम्णों ने मंत्र पढें हवन हुआ और वर के माथे पर तिलक लगा दिया गया। तुरन्त घर की स्त्रियो ने मंगलाचरण गाना शुरू किया। यहां पहफिल में महाशय यशोदानन्द ने एक चौकी पर खडे होकर दहेज की कुप्रथा पर व्याख्यान देना शुरू किया। व्याख्यान पहले से लिखकर तैयार कर लिया गया था। उन्होनें दहेज की ऐतिहासिक व्याख्या की थी।

पूर्वकाल में दहेज का नाम भी न थ। महाशयों ! कोई जानता ही न था कि दहेज या ठहरोनी किस चिडिया का नाम है। सत्य मानिए, कोई जानता ही न था कि ठहरौनी है क्या चीज, पशु या पक्षी, आसमान में या जमीन में, खाने में या पीने में । बादशाही जमाने में इस प्रथा की बुंनियाद पडी। हमारे युवक सेनाओं में सम्मिलित होने लगे । यह वीर लोग थें, सेनाओं में जाना गर्व समझते थे। माताएं अपने दुलारों को अपने हाथ से शस्त्रों से सजा कर रणक्षेत्र भेजती थीं। इस भाँति युवकों की संख्या कम होने लगी और लडकों का मोल-तोल शुरू हुआ। आज यह नौवत आ गयी है कि मेरी इस तुच्छ -महातुच्छ सेवा पर पत्रों में टिप्पणियां हो रही है मानों मैंने कोई असाधारण काम किया है। मै कहता हूं ; अगर आप संसार में जीवित रहना चाहते हो तो इस प्रथा क तुरन्त अन्त कीजिए।

एक महाशय ने शंका की----क्या इसका अंत किये बिना हम सब मर जायेगें ?

यशोदानन्द-अगर ऐसा होता है तो क्या पूछना था, लोगो को दंड मिल जाता और वास्तव में ऐसा होना चाहिए। यह ईश्वर का अत्याचार है कि ऐसे लोभी, धन पर गिरने वाले, बुर्दा-फरोश, अपनी संतान का विक्रय करने वाले नराधम जीवित है। और समाज उनका तिरस्कार नही करता । मगर वह सब बुर्द-फरोश है------ इत्यादि।

व्याख्यान बहुंतद लम्बा ओर हास्य भरा हुआ था। लोगों ने खूब वाह-वाह की । अपना वक्तव्य समाप्त करने के बाद उन्होने अपने छोटे लडके परमानन्द को, जिसकी अवस्था ७ वर्ष की थी, मंच पर खडा किया। उसे उन्होनें एक छोटा-सा व्याख्यान लिखकर दे रखा था। दिखाना चाहते थे कि इस कुल के छोटे बालक भी कितने कुशाग्र बुद्वि है। सभा समाजों में बालकों से व्याख्यान दिलाने की प्रथा है ही, किसी को कुतूहल न हुआ।बालक बडा सुन्दर, होनहार, हंसमुख था। मुस्कराता हुआ मंच पर आया और एक जेब से कागज निकाल कर बडे गर्व के साथ उच्च स्वर में पढने लगा---

प्रिय बंधुवर,

नमस्कार !

आपके पत्र से विदित होता है कि आपको मुझ पर विश्वास नही है। मैं ईश्वर को साक्षी करके धन आपकी सेवा में इतनी गुप्त रीति से पहुंचेगा कि किसी को लेशमात्र भी सन्देह न होगा । हां केवल एक जिज्ञासा करने की धृष्टता करता हूं। इस व्यापार को गुप्त रखने से आपको जो सम्मान और प्रतिष्ठा - लाभ होगा और मेरे निकटवर्ती में मेरी जो निंदा की जाएगी, उसके उपलक्ष्य में मेरे साथ क्या रिआयत होगी ? मेरा विनीत अनुरोध है कि २५ में से ५ निकालकर मेरे साथ न्याय किया जाय.....।

महाशय श्योदानन्द घर में मेहमानों के लिए भोजन परसने का आदेश करने गये थे। निकले तो यह बाक्य उनके कानों में पडा-२५ में से ५ मेरे साथ न्याय किया कीजिए ।' चेहरा फक हो गया, झपट कर लडके के पास गये, कागज उसके हाथ से छीन लिया और बौले--- नालायक, यह क्या पढ रहा है, यह तो किसी मुवक्किल का खत है जो उसने अपने मुकदमें के बारें में लिखा था। यह तू कहां से उठा लाया, शैतान जा वह कागज ला, जो तुझे लिखकर दिया गया था।

एक महाशय-----पढने दीजिए, इस तहरीर में जो लुत्फ है, वह किसी दूसरी तकरीर में न होगा।

दूसरे---जादू वह जो सिर चढ के बोलें !

तीसरे-अब जलसा बरखास्त कीजिए । मैं तो चला।

चौथै-यहां भी चलतु हुए।

यशोदानन्द-बैठिए-बैठिए, पत्तल लगाये जा रहे है।

पहले-बेटा परमानन्द, जरा यहां तो आना, तुमने यह कागज कहां पाया ?

परमानन्द---बाबू जी ही तो लिखकर अपने मेज के अन्दर रख दिया था। मुझसे कहा था कि इसे पढना। अब नाहक मुझसे खफा रहे है।

यशोदानन्द---- वह यह कागज था कि सुअर ! मैंने तो मेज के ऊपर ही रख दिया था। तूने ड्राअर में से क्यों यह कागज निकाला ?

परमानन्द---मुझे मेज पर नही मिला ।

यशोदान्नद---तो मुझसे क्यों नही कहा, ड्राअर क्यों खोला ? देखो, आज ऐसी खबर लेता हूं कि तुम भी याद करोगे।

पहले यह आकाशवाणी है।

दूसरे----इस को लीडरी कहते है कि अपना उल्लू सीधा करो और नेकनाम भी बनो।

तीसरे----शरम आनी चाहिए। यह त्याग से मिलता है, धोखेधडी से नही।

चौथे---मिल तो गया था पर एक आंच की कसर रह गयी।

पांचवे---ईश्वर पांखंडियों को यों ही दण्ड देता है

यह कहते हुए लोग उठ खडे हुए। यशोदानन्द समझ गये कि भंडा फूट गया, अब रंग न जमेगा। बार-बार परमानन्द को कुपित नेत्रों से देखते थे और डंडा तौलकर रह जाते थे। इस शैतान ने आज जीती-जिताई बाजी खो दी, मुंह में कालिख लग गयी, सिर नीचा हो गया। गोली मार देने का काम किया है।

उधर रास्ते में मित्र-वर्ग यों टिप्पणियां करते जा रहे थे-------

एक ईश्वर ने मुंह में कैसी कालिमा लगायी कि हयादार होगा तो अब सूरत न दिखाएगा।

दूसरा--ऐसे-ऐसे धनी, मानी, विद्वान लोग ऐसे पतित हो सकते है। मुझे यही आश्चर्य है। लेना है तो खुले खजाने लो, कौन तुम्हारा हाथ पकडता है; यह क्या कि माल चुपके-चुपके उडाओं और यश भी कमाओं !
तीसरा--मक्कार का मुंह काला !

चौथा-यशोदानन्द पर दया आ रही है। बेचारी ने इतनी धूर्तता की, उस पर भी कलई खुल ही गयी। बस एक आंच की कसर रह गई।

***

माता का ह्रदय

माधवी की आंखों में सारा संसार अंधेरा हो रहा था । काई अपना मददगार दिखाई न देता था। कहीं आशा की झलक न थी। उस निर्धन घर में वह अकेली पडी रोती थी और कोई आंसू पोंछने वाला न था। उसके पति को मरे हुए २२ वर्ष हो गए थे। घर में कोई सम्पत्ति न थी। उसने न- जाने किन तकलीफों से अपने बच्चे को पाल-पोस कर बडा किया था। वही जवान बेटा आज उसकी गोद से छीन लिया गया था और छीनने वाले कौन थे ? अगर मृत्यु ने छीना होता तो वह सब्र कर लेती। मौत से किसी को द्वेष नहीं होता। मगर स्वार्थियों के हाथों यह अत्याचार असह्य हो रहा था। इस घोर संताप की दशा में उसका जी रह-रह कर इतना विफल हो जाता कि इसी समय चलूं और उस अत्याचारी से इसका बदला लूं जिसने उस पर निष्ठुर आघात किया है। मारूं या मर जाऊं। दोनों ही में संतोष हो जाएगा।

कितना सुंदर, कितना होनहार बालक था ! यही उसके पति की निशानी, उसके जीवन का आधार उसकी अम्र भर की कमाई थी। वही लडका इस वक्त जेल मे पडा न जाने क्या-क्या तकलीफें झेल रहा होगा ! और उसका अपराध क्या था ? कुछ नही। सारा मुहल्ला उस पर जान देता था। विधालय के अध्यापक उस पर जान देते थे। अपने-बेगाने सभी तो उसे प्यार करते थे। कभी उसकी कोई शिकायत सुनने में नहीं आयी।ऐसे बालक की माता होन पर उसे बधाई देती थी। कैसा सज्जन, कैसा उदार, कैसा परमार्थी ! खुद भूखो सो रहे मगर क्या मजाल कि द्वार पर आने वाले अतिथि को रूखा जबाब दे। ऐसा बालक क्या इस योग्य था कि जेल में जाता ! उसका अपराध यही था, वह कभी-कभी सुनने वालों को अपने दुखी भाइयों का दुखडा सुनाया करता था। अत्याचार से पीडित प्राणियों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहता था। क्या यही उसका अपराध था?

दूसरो की सेवा करना भी अपराध है ? किसी अतिथि को आश्रय देना भी अपराध है ?

इस युवक का नाम आत्मानंद था। दुर्भाग्यवश उसमें वे सभी सद्‌गुण थे जो जेल का द्‌वार खोल देते है। वह निर्भीक था, स्पष्टवादी था, साहसी था, स्वदेश-प्रेमी था, नि:स्वार्थ था, कर्तव्यपरायण था। जेलल जाने के लिए इन्हीं गुणो की जरूरत है। स्वाधीन प्राणियों के लिए वे गुण स्वर्ग का द्‌वार खोल देते है, पराधीनो के लिए नरक के ! आत्मानंद के सेवा-कार्य ने, उसकी वक्तृतताओं ने और उसके राजनीतिक लेखो ने उसे सरकारी कर्मचारियों की नजरों में चढा दिया था। सारा पुलिस-विभाग नीचे से ऊपर तक उससे सर्तक रहता था, सबकी निगाहें उस पर लगीं रहती थीं। आखिर जिले में एक भयंकर डाके ने उन्हे इच्छित अवसर प्रदान कर दिया।

आत्मानंद के घर की तलाशी हुई, कुछ पत्र और लेख मिले, जिन्हें पुलिस ने डाके का बीजक सिद्‌व किया। लगभग २० युवकों की एक टोली फांस ली गयी। आत्मानंद इसका मुखिया ठहराया गया। शहादतें हुई । इस बेकारी और गिरानी के जमाने में आत्मा सस्ती और कौन वस्तु हो सकती है। बेचने को और किसी के पास रह ही क्या गया है। नाम मात्र का प्रलोभन देकर अच्छी-से-अच्छी शहादतें मिल सकती है, और पुलिस के हाथ तो निकृष्ट-से- निकृष्ट गवाहियां भी देववाणी का महत्व प्राप्त कर लेती है। शहादतें मिल गयीं, महीनें-भर तक मुकदमा क्या चला एक स्वांग चलता रहा और सारे अभियुक्तों को सजाएं दे दी गयीं। आत्मानंद को सबसे कठोर दंड मिला ८ वर्ष का कठिन कारावास। माधवी रोज कचहरी जाती; एक कोने में बैठी सारी कार्यवाई देखा करती।
मानवी चरित्र कितना दुर्बल, कितना नीच है, इसका उसे अब तक अनुमान भी न हुआ था। जब आत्मानंद को सजा सुना दी गयी और वह माता को प्रणाम करके सिपाहियों के साथ चला तो माधवी मूर्छित होकर गिर पडी । दो-चार सज्जनों ने उसे एक तांगे पर बैठाकर घर तक पहुंचाया। जब से वह होश में आयी है उसके हृदय में शूल-सा उठ रहा है। किसी तरह धैर्य नही होता । उस घोर आत्म-वेदना की दशा में अब जीवन का एक लक्ष्य दिखाई देता है और वह इस अत्याचार का बदला है।

अब तक पुत्र उसके जीवन का आधार था। अब शत्रुओं से बदला लेना ही उसके जीवन का आधार होगा। जीवन में उसके लिए कोई आशा न थी। इस अत्याचार का बदला लेकर वह अपना जन्म सफल समझगी। इस अभागे नर-पिशाच बगची ने जिस तरह उसे रक्त के आसूं रॅलाये हैं उसी भांति यह भी उस रूलायेगी। नारी-हृदय कोमल है लेकिन केवल अनुकूल दशा में: जिस दशा में पुरूष दूसरों को दबाता है, स्त्री शील और विनय की देवी हो जाती है। लेकिन जिसके हाथों में अपना सर्वनाश हो गया हो उसके प्रति स्त्री की पुरूष से कम घ्ज्रृणा ओर क्रोध नहीं होता अंतर इतना ही है कि पुरूष शास्त्रों से काम लेता है, स्त्री कौशल से ।

रा भीगती जाती थी और माधवी उठने का नाम न लेती थी। उसका दु:ख प्रतिकार के आवेश में विलीन होता जाता था। यहां तक कि इसके सिवा उसे और किसी बात की याद ही न रही। उसने सोचा, कैसे यह काम होगा? कभी घर से नहीं निकली।वैधव्य के २२ साल इसी घर कट गये लेकिन अब निकूलूंगीं। जबरदस्ती निकलूंगी, भिखारिन बनूगीं, टहलनी बनूगी, झूठ बोलूंगी, सब कुकर्म करूंगी। सत्कर्म के लिए संसार में स्थान नहीं। ईश्वर ने निराश होकर कदाचित् इसकी ओर से मुंह फेर लिया है। जभी तो यहां ऐसे-ऐसे अत्याचार होते है। और पापियों को दडं नहीं मिलता। अब इन्हीं हाथों से उसे दंड दूगी।

2

संध्या का समय था। लखनऊ के एक सजे हुए बंगले में मित्रों की महफिल जमी हुई थी। गाना-बजाना हो रहा था। एक तरफ आतशबाजियां रखी हुई थीं। दूसरे कमरे में मेजों पर खना चुना जा रहा था। चारों तरफ पुलिस के कर्मचारी नजर आते थें वह पुलिस के सुपरिंटेंडेंट मिस्टर बगीची का बंगला है। कई दिन हुए उन्होने एक मार्के का मुकदमा जीता था।अफसरो ने खुश होकर उनकी तरक्की की दी थी। और उसी की खुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा था। यहां आये दिन ऐसे उत्सव होते रहते थे। मुफ्त के गवैये मिल जाते थे, मुफ्त की अतशबाजी; फल और मेवे और मिठाईयां आधे दामों पर बाजार से आ जाती थीं। और चट दावतो हो जाती थी। दूसरों के जहों सौ लगते, वहां इनका दस से काम

चल जाता था। दौड़-धूप करने को सिपाहियों की फौज थी हीं। और यह मार्के का मुकदमा क्या था? वह जिसमें निरपराध युवकों को बनावटी शहादत से जेल में ठूस दिया गया था।

गाना समाप्त होने पर लोग भोजन करने बैठें। बेगार के मजदूर और पल्लेदार जो बाजार से दावत और सजावट के सामान लाये थे, रोते या दिल में गालियां देते चले गये थे; पर एक बुढ़िया अभी तक द्वार पर बैठी हुई थी। और अन्य मजदूरों की तरह वह भूनभुना कर काम न करती थी। हुक्म पाते ही खुश-दिल मजदूर की तरह हुक्म बजा लाती थी। यह मधवी थी, जो इस समय मजूरनी का वेष धारण करके अपना घतक संकल्प पूरा करने आयी थी।

मेहमान चले गये। महफिल उठ गयी। दावत का समान समेट दिया गया। चारों ओर सन्नाटा छा गया; लेकिन माधवी अभी तक वहीं बैठी थी।

सहसा मिस्टर बागची ने पूछा-बुड़ढी तू यहां क्यों बैठी है? तुझे कुछ खाने को मिल गया?

माधवी-हां हुजूर, मिल गया। बागची-तो जाती क्यों नहीं?

माधवी-कहां जाऊं सरकार , मेरा कोई घर-द्वार थोड़े ही है। हुकुम हो तो यहीं पडी रहूं। पाव-भर आटे की परवस्ती हो जाय हुजुर।

बगची -नौकरी करेगी?

माधवी-क्यो न करूंगी सरकार, यही तो चाहती हूं।

बागची-लड़का खिला सकती है?

माधवी-हां हजूर, वह मेरे मन का काम है।

बगची-अच्छी बात है। तु आज ही से रह। जा घर में देख, जो काम बतायें, वहा कर।

3

एक महीना गुजर गया। माधवी इतना तन-मन से काम करती है कि सारा घर उससे खुश है। बहू जी का मीजाज बहुम ही चिड़चिड़ा है। वह दिन-भर खाट पर पड़ी रहती है और बात-बात पर नौकरों पर झल्लाया करती है। लेकिन माधवी उनकी घुड़कियों को भी सहर्ष सह लेती है। अब तक मुश्किल से कोई दाई एक सप्ताह से अधिक ठहरी थी। माधवी का कलेजा है कि जली-कटी सुनकर भी मुख पर मैल नहीं आने देती।

मिस्टर बागची के कई लड़के हो चुके थे, पर यही सबसे छोटा बच्चा बच रहा था। बच्चे पैदा तो हृष्ट-पृष्ट होते, किन्तु जन्म लेते ही उन्हे एक -न एक रोग लग जाता था और कोई दो-चार महीनें, कोई साल भर जी कर चल देता था। मां-बाप दोनों इस शिशु पर प्राण देते थे। उसे जरा जुकाम भी हो तो दोनो विकल हो जाते। स्त्री-पुरूष दोनो शिक्षित थे, पर बच्चे की रक्षा के लिए टोना-टोटका , दुआता-बीच, जन्तर-मंतर एक से भी उन्हें इनकार न था।

माधवी से यह बालक इतना हिल गया कि एक क्षण के लिए भी उसकी गोद से न उतरता। वह कहीं एक क्षण के लिए चली जाती तो रो-रो कर दुनिया सिर पर उठा लेता। वह सुलाती तो सोता, वह दूध पिलाती तो पिता, वह खिलाती तो खेलता, उसी को वह अपनी माता समझता। माधवी के सिवा उसके लिए संसार में कोई अपना न था। बाप को तो वह दिन-भर में केवल दो-नार बार देखता और समझता यह कोई परदेशी आदमी है। मां आलस्य और कमजारी के मारे गोद में लेकर टहल न सकती थी। उसे वह अपनी रक्षा का भार संभालने के योग्य न समझता था, और नौकर-चाकर उसे गोद में ले लेते तो इतनी वेदर्दी से कि उसके कोमल अंगो मे पीड़ा होने लगती थी। कोई उसे ऊपर उछाल देता था, यहां तक कि अबोध शिशु का कलेजा मुंह को आ जाता था। उन सबों से वह

डरता था। केवल माधवी थी जो उसके स्वभाव को समझती थी। वह जानती थी कि कब क्या करने से बालक प्रसन्न होगा। इसलिए बालक को भी उससे प्रेम था।

माधवी ने समझाया था, यहां कंचन बरसता होगा; लेकिन उसे देखकर कितना विस्मय हुआ कि बडी मुश्किल से महीने का खर्च पूरा पडता है। नौकरों से एक-एक पैसे का हिसाब लिया जाता था और बहुधा आवश्यक वस्तुएं भी टाल दी जाती थीं। एक दिन माधवी ने कहा-बच्चे के लिए कोई तेज गाड़ी क्यों नहीं मंगवा देतीं। गोद में उसकी बाढ़ मारी जाती है।

मिसेज बागजी ने कुठिंत होकर कहा-कहां से मगवां दूं? कम से कम ५०-६० रुपयं में आयेगी। इतने रुपये कहां है?

माधवी-मलकिन, आप भी ऐसा कहती है!

मिसेज बगची-झूठ नहीं कहती। बाबू जी की पहली स्त्री से पांच लड़कियां और है। सब इस समय इलाहाबाद के एक स्कूल में पढ रही हैं। बड़ी की उम्र १५-१६ वर्ष से कम न होगी। आधा वेतन तो उधार ही चला जाता है। फिर उनकी शादी की भी तो फिक्र है। पांचो के विवाह में कम-से-कम २५ हजार लगेंगे। इतने रूपये कहां से आयेगें। मै चिंता के मारे मरी जाती हूं। मुझे कोई दूसरी बीमारी नहीं है केवल चिंता का रोग है।

माधवी-घूस भी तो मिलती है।

मिसेज बागची-बूढ़ी, ऐसी कमाई में बरकत नहीं होती। यही क्यों सच पूछो तो इसी घूस ने हमारी यह दुर्गती कर रखी है। क्या जाने औरों को कैसे हजम होती है। यहां तो जब ऐसे रूपये आते है तो कोई-न-कोई नुकसान भी अवश्य हो जाता है। एक आता है तो दो लेकर जाता है। बार-बार मना करती हूं, हराम की कौड़ी घर मे न लाया करो, लेकिन मेरी कौन सुनता है।

बात यह थी कि माधवी को बालक से स्नेह होता जाता था। उसके अमंगल की कल्पना भी वह न कर सकती थी। वह अब उसी की नींद सोती और उसी की नींद जागती थी। अपने सर्वनाश की बात याद करके एक क्षण के लिए बागची पर क्रोध तो हो आता था और घाव फिर हरा हो जाता था; पर मन पर कुत्सित भावों का आधिपत्य न था। घाव भर रहा था, केवल ठेस लगने से दर्द हो जाता था। उसमें स्वंय टीस या जलन न थी। इस परिवार पर अब उसे दया आती थी। सोचती, बेचारे यह छीन-झपट न करें तो कैसे गुजर हो। लड़कियों का विवाह कहां से करेगें! स्त्री को जब देखो बीमार ही रहती है। उन पर बाबू जी को एक बोतल शराब भी रोज चाहिए। यह लोग स्वयं अभागे है। जिसके घर में ५-५क्वारी कन्याएं हों, बालक हो-हो कर मर जाते हों, घरनी दा बीमार रहती हो, स्वामी शराब का तली हो, उस पर तो यों ही ईश्वर का कोप है। इनसे तो मैं अभागिन ही अच्छी!

४

दुर्बल बलकों के लिए बरसात बुरी बला है। कभी खांसी है, कभी ज्वर, कभी दस्त। जब हवा में ही शीत भरी हो तो कोई कहां तक बचाये। माधवी एक दिन आपने घर चली गयी थी। बच्चा रोने लगा तो मां ने एक नौकर को दिया, इसे बाहर बहला ला। नौकर ने बाहर ले जाकर हरी-हरी घास पर बैठा दिया,। पानी बरस कर निकल गया था। भूमि गीली हो रही थी। कहीं-कहीं पानी भी जमा हो गया था। बालक को पानी में छपके लगाने से ज्यादा प्यारा और कौन खेल हो सकता है। खूब प्रेम से उमंग-उमंग कर पानी में लोटने लगां नौकर बैठा और आदमियों के साथ गप-शप करता घंटो गुजर गये। बच्चे ने खूब सर्दी खायी। घर आया तो उसकी नाक बह रही थीं रात को माधवी ने आकर देखा तो बच्चा खांस रहा था। आधी रात के करीब उसके गले से खुरखुर की आवाज निकलने लगी। माधवी का कलेजा सन से हो गया। स्वामिनी को जगाकर बोली-देखो तो बच्चे

को क्या हो गया है। क्या सर्दी-वर्दी तो नहीं लग गयी। हां, सर्दी ही मालूम होती है।

स्वामिनी हकबका कर उठ बैठी और बालक की खुरखराहट सुनी तो पांव तलेजमीन निकल गयीं यह भंयकर आवाज उसने कई बार सुनी थी और उसे खूब पहचानती थी। व्यग्र होकर बोली-जरा आग जलाओ। थोड़ा-सा तंग आ गयी। आज कहार जरा देर के लिए बाहर ले गया था, उसी ने सर्दी में छोड़ दिया होगा।

सारी रात दोंनो बालक को सेंकती रहीं। किसी तरह सवेरा हुआ। मिस्टर बागची को खबर मिली तो सीधे डाक्टर के यहां दौड़े। खैरियत इतनी थी कि जल्द एहतियात की गयी। तीन दिन में अच्छा हो गया; लेकिन इतना दुर्बल हो गया था कि उसे देखकर डर लगता था। सच पूछों तो माधवी की तपस्या ने बालक को बचायां। माता-पिता सो जाता, किंतु माधवी की आंखों में नींद न थी। खना-पीना तक भूल गयी। देवताओं की मनौतियां करती थी, बच्चे की बलाएं लेती थी, बिल्कुल पागल हो गयी थी, यह वही माधवी है जो अपने सर्वनाश का बदला लेने आयी थी। अपकार की जगह उपकार कर रही थी।विष पिलाने आयी थी, सुधा पिला रही थी। मनुष्य में देवता कितना प्रबल है!
प्रात:काल का समय था। मिस्टर बागची शिशु के झूले के पास बैठे हुए थे। स्त्री के सिर में पीड़ा हो रही थी। वहीं चारपाई पर लेटी हुई थी और माधवी समीप बैठी बच्चे के लिए दुध गरम कर रही थी। सहसा बागची ने कहा-बूढ़ी, हम जब तक जियेंगे तुम्हारा यश गयेंगे। तुमने बच्चे को जिला लियां

स्त्री-यह देवी बनकर हमारा कष्ट निवारण करने के लिए आ गयी। यह न होती तो न जाने क्या होता। बूढ़ी, तुमसे मेरी एक विनती है। यों तो मरना जीना प्रारब्ध के हाथ है, लेकिन अपना-अपना पौरा भी बड़ी चीज है। मैं अभागिनी हूं। अबकी तुम्हारे ही पुण्य-प्रताप से बच्चा संभल गया। मुझे डर लग रहा है कि ईश्वर इसे हमारे हाथ से छीन ने ले। सच कहतीं हूं बूढ़ी, मुझे इसका गोद में लेते डर लगता हैं। इसे तुम आज से अपना बच्चा समझो। तुम्हारा होकर शायद बच

जाय। हम अभागे हैं, हमारा होकर इस पर नित्य कोई-न-कोई संकट आता रहेगा। आज से तुम इसकी माता हो जाआ। तुम इसे अपने घर ले जाओ। जहां चाहे ले जाओ, तुम्हारी गोंद मे देर मुझे फिर कोई चिंता न रहेगी। वास्तव में तुम्हीं इसकी माता हो, मै तो राक्षसी हूं।

माधवी-बहू जी, भगवान् सब कुशल करेगें, क्यों जी इतना छोटा करती हो?

मिस्टर बागची-नहीं-नहीं बूढ़ी माता, इसमें कोई हरज नहीं है। मै मस्तिष्क से तो इन बांतो को ढकोसला ही समझता हूं; लेकिन हृदय से इन्हें दूर नहीं कर सकता। मुझे स्वयं मेरी माता जीने एक धाबिन के हाथ बेच दिया था। मेरे तीन भाई मर चुके थे। मै जो बच गया तो मां-बाप ने समझा बेचने से ही इसकी जान बच गयी। तुम इस शिशु को पालो-पासो। इसे अपना पुत्र समझो। खर्च हम बराबर देते रहेंगें। इसकी कोई चिंता मत करना। कभी -कभी जब हमारा जी चाहेगा, आकर देख लिया करेगें। हमें विश्वास है कि तुम इसकी रक्षा हम लोंगों से कहीं अच्छी तरह कर सकती हो। मैं कुकर्मी हूं। जिस पेशे में हूं, उसमें कुकर्म किये बगैर काम नहीं चल सकता। झूठी शहादतें बनानी ही पड़ती है, निरपराधों को फंसाना ही पड़ता है। आत्मा इतनी दुर्बल हो गयी है कि प्रलोभन में पड़ ही जाता हूं। जानता ही हूं कि बुराई का फल बुरा ही होता है; पर परिस्थिति से मजबूर हूं। अगर न करूं तो आज नालायक बनाकर निकाल दिया जाऊं। अग्रेज हजारों भूलें करें, कोई नहीं पूछता। हिनदूस्तानी एक भूल भी कर बैठे तो सारे अफसर उसके सिर हो जाते है। हिंदुस्तानियत को दोष मिटाने केलिए कितनी ही ऐसी बातें करनी पड़ती है जिनका अग्रेंज के दिल में कभी ख्याल ही नहीं पैदा हो सकता। तो बोलो, स्वीकार करती हो?

माधवी गद्गद् होकर बोली-बाबू जी, आपकी इच्छा है तो मुझसे भी जो कुछ बन पडेगा, आपकी सेवा कर दूंगीं भगवान् बालक को अमर करें, मेरी तो उनसे यही विनती है।

माधवी को ऐसा मालूम हो रहा था कि स्वर्ग के द्वार सामने खुले हैं और स्वर्ग की देवियां अंचल फैला-फैला कर आशीर्वाद दे रही हैं, मानो उसके अंतस्तल में प्रकाश की लहरें-सी उठ रहीं है। स्नेहमय सेवा में कि कितनी शांति थी।

बालक अभी तक चादर ओढ़े सो रहा था। माधवी ने दूध गरम हो जाने पर उसे झूले पर से उठाया, तो चिल्ला पड़ी। बालक की देह ठंडी हो गयी थी और मुंह पर वह पीलापन आ गया था जिसे देखकर कलेजा हिल जाता है, कंठ से आह निकल आती है और आंखों से आसूं बहने लगते हैं। जिसने इसे एक बारा देखा है फिर कभी नहीं भूल सकता। माधवी ने शिशु को गोंद से चिपटा लिया, हालाकिं नीचे उतार दोना चाहिए था।

कुहराम मच गया। मां बच्चे को गले से लगाये रोती थी; पर उसे जमीन पर न सुलाती थी। क्या बातें हो रही रही थीं और क्या हो गया। मौत को धोखा दोने में आन्नद आता है। वह उस वक्त कभी नहीं आती जब लोग उसकी राह देखते होते हैं। रोगी जब संभल जाता है, जब वह पथ्य लेने लगता है, उठने-बैठने लगता है, घर-भर खुशियां मनाने लगता है, सबकों विश्वास हो जाता है कि संकट टल गया, उस वक्त घात में बैठी हुई मौत सिर पर आ जाती है। यही उसकी निठुर लीला है।

आशाओं के बाग लगाने में हम कितने कुशल हैं। यहां हम रक्त के बीज बोकर सुधा के फल खाते हैं। अग्नि से पौधों को सींचकर शीतल छांह में बैठते हैं। हां, मंद बुद्धि।

दिन भर मातम होता रहा; बाप रोता था, मां तड़पती थी और माधवी बारी-बारी से दोनो को समझाती थी।यदि अपने प्राण देकर वह बालक को जिला सकती तो इस समया अपना धन्य भाग समझती। वह अहित का संकल्प करके यहां आयी थी और आज जब उसकी मनोकामना पूरी हो गयी और उसे खुशी से फूला न समाना चाहिए था, उस उससे कहीं घोर पीड़ा हो रही थी जो अपने पुत्र की जेल यात्रा में हुई थी। रूलाने आयी थी और खुद राती जा रहीं थी। माता का हृदय

दया का आगार है। उसे जलाओ तो उसमें दया की ही सुगंध निकलती है, पीसो तो दया का ही रस निकलता है। वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएं भी उस स्वच्छ निर्मल स्रोत को मलिन नहीं कर सकतीं।

***

परीक्षा

नादिरशाह की सेना में दिल्ली के कत्लेआम कर रखा है। गलियों मे खून की नदियां बह रही हैं। चारो तरफ हाहाकार मचा हुआ है। बाजार बंद है। दिल्ली के लोग घरों के द्वार बंद किये जान की खैर मना रहे है। किसी की जान सलामत नहीं है। कहीं घरों में आग लगी हुई है, कहीं बाजार लुट रहा है; कोई किसी की फरियाद नहीं सुनता। रईसों की बेगमें महलो से निकाली जा रही है और उनकी बेहुरती की जाती है। ईरानी सिपाहियों की रक्त पिपासा किसी तरह नहीं बुझती। मानव हृदया की क्रूरता, कठोरता और पैशाचिकता अपना विकरालतम रूप धारण किये हुए है। इसी समया नादिर शाह ने बादशाही महल में प्रवेश किया।

दिल्ली उन दिनों भोग-विलास की केंद्र बनी हुई थी। सजावट और तकल्लुफ के सामानों से रईसों के भवन भरे रहते थे। स्त्रियों को बनाव-सिगांर के सिवा कोई काम न था। पुरूषों को सुख-भोग के सिवा और कोई चिन्ता न थी। राजीनति का स्थान शेरो-शायरी ने ले लिया था। समस्त प्रन्तो से धन खिंच-खिंच कर दिल्ली आता था। और पानी की भांति बहाया जाता था। वेश्याओं की चादीं थी। कहीं तीतरों के जोड़ होते थे, कहीं बटेरो और बुलबुलों की पलियां ठनती थीं। सारा नगर विलास -निद्रा में मग्न था। नादिरशाह शाही महल में पहुंचा तो वहां का सामान देखकर उसकी आंखें खुल गयीं। उसका जन्म दरिद्र-घर में हुआ था। उसका समसत जीवन रणभूमि में ही कटा था। भोग विलास का उसे चसका न लगा था। कहां रण-क्षेत्र के कष्ट और कहां यह सुख-साम्राज्य। जिधर आंख उठती थी, उधर से हटने का नाम न लेती थी।

संध्या हो गयी थी। नादिरशाह अपने सरदारों के साथ महल की सैर करता और अपनी पसंद की सचीजों को बटोरता हुआ दीवाने-खास में आकर कारचोबी मसनद पर बैठ गया, सरदारों को वहां से चले जाने का हुक्म दे दिया, अपने सबहथियार रख दिये और महल के दरागा को बुलाकर हुक्म दिया-मै शाही बेगमों का नाच देखना चाहता हूं। तुम इसी वक्त उनको सुंदर वस्त्राभूषणों से

सजाकर मेरे सामने लाओं खबरदार, जरा भी देर न हो! मै कोई उज्र या इनकार नहीं सुन सकता।

2

दारोगा ने यह नादिरशाही हुक्म सुना तो होश उड़ गये। वह महिलएं जिन पर सूर्य की दृटि भी नहीं पड़ी कैसे इस मजलिस में आयेंगी! नाचने का तो कहना ही क्या! शाही बेगमों का इतना अपमान कभी न हुआ था। हा नरपिशाच! दिल्ली को खून से रंग कर भी तेरा चित्त शांत नहीं हुआ। मगर नादिरशाह के सम्मुख एक शब्द भी जबान से निकालना अग्नि के मुख में कूदना था! सिर झुकाकर आदाग लाया और आकर रनिवास में सब वेगमों को नादीरशाही हुक्म सुना दिया; उसके साथ ही यह इत्त्ला भी दे दी कि जरा भी ताम्मुल न हो , नादिरशाह कोई उज्र या हिला न सुनेगा! शाही खानदोन पर इतनी बड़ी विपत्ति कभी नहीं पड़ी; पर अस समय विजयी बादशाह की आज्ञा को शिरोधार्य करने के सिवा प्राण-रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं था।

बेगमों ने यह आज्ञा सुनी तो हतबुद्धि-सी हो गयीं। सारे रनिवास में मातम-सा छा गया। वह चहल-पहल गायब हो गयीं। सैकडो हृदयों से इस सहायता-याचक लोचनों से देखा, किसी ने खुदा और रसूल का सुमिरन किया; पर ऐसी एक महिला भी न थी जिसकी निगाह कटार या तलवार की तरफ गयी हो। यद्यपी इनमें कितनी ही बेगमों की नसों में राजपूतानियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था; पर इंद्रियलिप्सा ने जौहर की पुरानी आग ठंडी कर दी थी। सुख-भोग की लालसा आत्म-सम्मान का सर्वनाश कर देती है। आपस में सलाह करके मर्यादा की रक्षा का कोई उपाया सोचने की मुहलत न थी। एक-एक पल भाग्य का निर्णय कर रहा था। हताश का निर्णय कर रहा था। हताश होकर सभी ललपाओं ने पापी के सम्मुख जाने का निश्चय किया। आंखों से आसूं जारी थे, अश्रु-सिंचित नेत्रों में सुरमा लगाया जा रहा था और शोक-व्यथित हृदयां पर सुगंध का लेप किया जा रहा था। कोई केश गुंथतीं थी, कोई मांगो में मोतियों पिरोती थी। एक भी ऐसे

पक्के इरादे की स्त्री न थी, जो इश्वर पर अथवा अपनी टेक पर, इस आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस कर सके।

एक घंटा भी न गुजरने पाया था कि बेगमात पूरे-के-पूरे, आभूषणों से जगमगातीं, अपने मुख की कांति से बेले और गुलाब की कलियों को लजातीं, सुगंध की लपटें उड़ाती, छमछम करती हुई दीवाने-खास में आकर दनादिरशाह के सामने खड़ी हो गयीं।

3

नादिर शाह ने एक बार कनखियों से परियों के इस दल को देखा और तब मसनद की टेक लगाकर लेट गया। अपनी तलवार और कटार सामने रख दी। एक क्षण में उसकी आंखें झपकने लगीं। उसने एक अगड़ाई ली और करवट बदल ली। जरा देर में उसके खर्राटों की अवाजें सुनायी देने लगीं। ऐसा जान पड़ा कि गहरी निद्रा में मग्न हो गया है। आध घंटे तक वह सोता रहा और बेगमें ज्यों की त्यों सिर निचा किये दीवार के चित्रों की भांति खड़ी रहीं। उनमें दो-एक महिलाएं जो ढीठ थीं, घूघंट की ओट से नादिरशाह को देख भी रहीं थीं और आपस में दबी जबान में कानाफूसी कर रही थीं-कैसा भंयकर स्वरूप है! कितनी रणोन्मत आंखें है! कितना भारी शरीर है! आदमी काहे को है, देव है।

सहसा नादिरशाह की आंखें खुल गई परियों का दल पूर्ववत् खड़ा था। उसे जागते देखकर बेगमों ने सिर नीचे कर लिये और अंग समेट कर भेड़ो की भांति एक दूसरे से मिल गयीं। सबके दिल धड़क रहे थे कि अब यह जालिम नाचने-गाने को कहेगा, तब कैसे होगा! खुदा इस जालिम से समझे! मगर नाचा तो न जायेगा। चाहे जान ही क्यों न जाय। इससे ज्यादा जिल्लत अब न सही जायगी।

सहसा नादिरशाह कठोर शब्दों में बोला-ऐ खुदा की बंदियो, मैने तुम्हारा इम्तहान लेने के लिए बुलाया था और अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारी निसबत मेरा जो गुमान था, वह हर्फ-ब-हर्फ सच निकला। जब किसी कौम की

औरतों में गैरत नहीं रहती तो वह कौम मुरदा हो जाती है।

देखना चाहता था कि तुम लोगों में अभी कुछ गैरत बाकी है या नहीं। इसलिए मैने तुम्हें यहां बुलाया था। मै तुमहारी बेहुरमली नहीं करना चाहता था। मैं इतना ऐश का बंदा नहीं हूं , वरना आज भेड़ो के गल्ले चाहता होता। न इतना हवसपरस्त हूं, वरना आज फारस में सरोद और सितार की तानें सुनाता होता, जिसका मजा मै हिंदुस्तानी गाने से कहीं ज्यादा उठा सकता हूं। मुझे सिर्फ तुम्हारा इम्तहान लेना था। मुझे यह देखकर सचा मलाल हो रहा है कि तुममें गैरत का जौहर बाकी न रहा। क्या यह मुमकिन न था कि तुम मेरे हुक्म को पैरों तले कुचल देतीं? जब तुम यहां आ गयीं तो मैने तुम्हें एक और मौका दिया। मैने नींद का बहाना किया। क्या यह मुमकिन न था कि तुममें से कोई खुदा की बंदी इस कटार को उठाकर मेरे जिगर में चुभा देती। मै कलामेपाक की कसम खाकर कहता हूं कि तुममें से किसी को कटार पर हाथ रखते देखकर मुझे बेहद खुशी होती, मै उन नाजुक हाथों के सामने गरदन झुका देता! पर अफसोस है कि आज तैमूरी खानदान की एक बेटी भी यहां ऐसी नहीं निकली जो अपनी हुरमत बिगाड़ने पर हाथ उठाती! अब यह सल्लतनत जिंदा नहीं रह सकती। इसकी हसती के दिन गिने हुए हैं। इसका निशान बहुत जल्द दुनिया से मिट जाएगा। तुम लोग जाओ और हो सके तो अब भी सल्तनत को बचाओ वरना इसी तरह हवस की गुलामी करते हुए दुनिया से रुखसत हो जाओगी।

***

तेंतर

आखिर वही हुआ जिसकी आंशका थी; जिसकी चिंता में घर के सभी लोग और विषेशत: प्रसूता पड़ी हुई थी। तीनो पुत्रो के पश्चात् कन्या का जन्म हुआ। माता सौर में सूख गयी, पिता बाहर आंगन में सूख गये, और की वृद्ध माता सौर द्वार पर सूख गयी। अनर्थ, महाअनर्थ भगवान् ही कुशल करें तो हो? यह पुत्री नहीं राक्षसी है। इस अभागिनी को इसी घर में जाना था! आना था तो कुछ दिन पहले क्यों न आयी। भगवान् सातवें शत्रु के घर भी तेंतर का जन्म न दें।

पिता का नाम था पंड़ित दामोदरदत्त। शिक्षित आदमी थे। शिक्षा-विभाग ही में नौकर भी थे; मगर इस संस्कार को कैसे मिटा देते, जो परम्परा से हृदय में जमा हुआ था, कि तीसरे बेटे की पीठ पर होने वाली कन्या अभागिनी होती है, या पिता को लेती है या पिता को, या अपने कों। उनकी वृद्धा माता लगी नवजात कन्या को पानी पी-पी कर कोसने, कलमुंही है, कलमुही! न जाने क्या करने आयी हैं यहां। किसी बांझ के घर जाती तो उसके दिन फिर जाते!

दामोदरदत्त दिल में तो घबराये हुए थे, पर माता को समझाने लगे-अम्मा तेंतर-बेंतर कुछ नहीं, भगवान् की इच्छा होती है, वही होता है। ईश्वर चाहेंगे तो सब कुशल ही होगा; गानेवालियों को बुला लो, नहीं लोग कहेंगे, तीन बेटे हुए तो कैसे फूली फिरती थीं, एक बेटी हो गयी तो घर में कुहराम मच गया।

माता-अरे बेटा, तुम क्या जानो इन बातों को, मेरे सिर तो बीत चुकी हैं, प्राण नहीं में समाया हुआ हैं तेंतर ही के जन्म से तुम्हारे दादा का देहांत हुआ। तभी से तेंतर का नाम सुनते ही मेरा कलेजा कांप उठता है।

दामोदर-इस कष्ट के निवारण का भी कोई उपाय होगा?

माता-उपाय बताने को तो बहुत हैं, पंडित जी से पूछो तो कोई-न-कोई उपाय बता देंगे; पर इससे कुछ होता नहीं। मैंने कौन-से अनुष्ठान नहीं किये, पर पंडित जी

की तो मुट्ठियां गरम हुईं, यहां जो सिर पर पड़ना था, वह पड़ ही गया। अब टके के पंडित रह गये हैं, जजमान मरे या जिये उनकी बला से, उनकी दक्षिणा मिलनी चाहिए। (धीरे से) लकड़ी दुबली-पतली भी नहीं है। तीनों लकड़ों से हृष्ट-पुष्ट है। बड़ी-बड़ी आंखे है, पतले-पतले लाल-लाल ओंठ हैं, जैसे गुलाब की पत्ती। गोरा-चिट्टा रंग हैं, लम्बी-सी नाक। कलमुही नहलाते समय रोयी भी नहीं, टुकुरटुकुर ताकती रही, यह सब लच्छन कुछ अच्छे थोड़े ही है।

दामोदरदत्त के तीनों लड़के सांवले थे, कुछ विशेष रूपवान भी न थे। लड़की के रूप का बखान सुनकर उनका चित्त कुछ प्रसन्न हुआ। बोले-अम्मा जी, तुम भगवान् का नाम लेकर गानेवालियों को बुला भेजों, गाना-बजाना होने दो। भाग्य में जो कुछ हैं, वह तो होगा ही।

माता-जी तो हुलसता नहीं, करूं क्या?

दामोदर-गाना न होने से कष्ट का निवारण तो होगा नहीं, कि हो जाएगा? अगर इतने सस्ते जान छूटे तो न कराओ गान।

माता-बुलाये लेती हूं बेटा, जो कुछ होना था वह तो हो गया। इतने में दाई ने सौर में से पुकार कर कहा-बहूजी कहती हैं गानावाना कराने का काम नहीं है।

माता-भला उनसे कहो चुप बैठी रहे, बाहर निकलकर मनमानी करेंगी, बारह ही दिन हैं बहुत दिन नहीं है; बहुत इतराती फिरती थी-यह न करूंगी, वह न करूंगी, देवी क्या हैं, मरदों की बातें सुनकर वही रट लगाने लगी थीं, तो अब चुपके से बैठती क्यो नहीं। मैं तो तेंतर को अशुभ नहीं मानतीं, और सब बातों में मेमों की बराबरी करती हैं तो इस बात में भी करे।

यह कहकर माता जी ने नाइन को भेजा कि जाकर गानेवालियों को बुला ला, पड़ोस में भी कहती जाना।

सवेरा होते ही बड़ा लड़का सो कर उठा और आंखे मलता हुआ जाकर दादी से पूछने लगा-बड़ी अम्मा, कल अम्मा को क्या हुआ?

माता-लड़की तो हुई है।

बालक खुशी से उछलकर बोला-ओ-हो-हो पैजनियां पहन-पहन कर छुन-छुन चलेगी, जरा मुझे दिखा दो दादी जी?

माता-अरे क्या सौर में जायगा, पागल हो गया है क्या?

लड़के की उत्सुकता न मानीं। सौर के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया और बोला-अम्मा जरा बच्ची को मुझे दिखा दो।

दाई ने कहा-बच्ची अभी सोती है।

बालक-जरा दिखा दो, गोद में लेकर।

दाई ने कन्या उसे दिखा दी तो वहां से दौड़ता हुआ अपने छोटे भाइयें के पास पहुंचा और उन्हें जगा-जगा कर खुशखबरी सुनायी।

एक बोला-नन्हीं-सी होगी।

बड़ा-बिलकुल नन्हीं सी! जैसी बड़ी गुड़िया! ऐसी गोरी है कि क्या किसी साहब की लड़की होगी। यह लड़की मैं लूंगा।

सबसे छोटा बोला-अमको बी दिका दो।

तीनों मिलकर लड़की को देखने आये और वहां से बगलें बजाते उछलते-कूदते बाहर आये।

बड़ा-देखा कैसी है!

मंझला-कैसे आंखें बंद किये पड़ी थी।

छोटा-हमें हमें तो देना।

बड़ा-खूब द्वार पर बारात आयेगी, हाथी, घोड़े, बाजे आतशबाजी। मंझला और छोटा ऐसे मग्न हो रहे थे मानो वह मनोहर दृश्य आंखो के सामने है, उनके सरल नेत्र मनोल्लास से चमक रहे थे।

मंझला बोला-फुलवारियां भी होंगी।

छोटा-अम बी पूल लेंगे!

2

छट्ठी भी हुई, बरही भी हुई, गाना-बजाना, खाना-पिलाना-देना-दिलाना सब-कुछ हुआ; पर रस्म पूरी करने के लिए, दिल से नहीं, खुशी से नहीं। लड़की दिन-दिन दुर्बल और अस्वस्थ होती जाती थी। मां उसे दोनों वक्त अफीम खिला देती और बालिका दिन और रात को नशे में बेहोश पड़ी रहती। जरा भी नशा उतरता तो भूख से विकल होकर रोने लगती! मां कुछ ऊपरी दूध पिलाकर अफीम खिला देती। आश्चर्य की बात तो यह थी कि अब की उसकी छाती में दूध नहीं उतरा। यों भी उसे दूध दे से उतरता था; पर लड़कों की बेर उसे नाना प्रकार की दूधवर्द्धक औषधियां खिलायी जाती, बार-बार शिशु को छाती से लगाया जाता, यहां तक कि दूध उतर ही आता था; पर अब की यह आयोजनाएं न की गयीं। फूल-सी बच्ची कुम्हलाती जाती थी। मां तो कभी उसकी ओर ताकती भी न थी। हां, नाइन कभी चुटकियां बजाकर चुमकारती तो शिशु के मुख पर ऐसी दयनीय, ऐसी करूण बेदना अंकित दिखायी देती कि वह आंखें पोंछती हुई चली जाती थी। बहु से कुछ कहने-सुनने का साहस न पड़ता। बड़ा लड़का सिद्धु बार-बार कहता-अम्मा, बच्ची को दो तो बाहर से खेला लाऊं। पर मां उसे झिड़क देती थी।

तीन-चार महीने हो गये। दामोदरदत्त रात को पानी पीने उठे तो देखा कि बालिका जाग रही है। सामने ताख पर मीठे तेल का दीपक जल रहा था, लड़की टकटकी बांधे उसी दीपक की ओर देखती थी, और अपना अंगूठा चूसने में मग्न थी। चुभ-चुभ की आवाज आ रही थी। उसका मुख मुरझाया हुआ था, पर वह न रोती थी न हाथ-पैर फेंकती थी, बस अंगूठा पीने में ऐसी मग्न थी मानों उसमें सुधा-रस भरा हुआ है। वह माता के स्तनों की ओर मुंह भी नहीं फेरती थी, मानो उसका उन पर कोई अधिकार है नहीं, उसके लिए वहां कोई आशा नहीं। बाबू साहब को उस पर दया आयी। इस बेचारी का मेरे घर जन्म लेने में क्या दोष है? मुझ पर या इसकी माता पर कुछ भी पड़े, उसमें इसका क्या अपराध है? हम कितनी निर्दयता कर रहे हैं कि कुछ कल्पित अनिष्ट के कारण इसका इतना तिरस्कार कर रहे है। मानों कि कुछ अमंगल हो भी जाय तो क्या उसके भय से इसके प्राण ले लिये जायेंगे। अगर अपराधी है तो मेरा प्रारब्ध है। इस नन्हें-से बच्चे के प्रति हमारी कठोरता क्या ईश्वर को अच्छी लगती होगी? उन्होनें उसे गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमने लगे। लड़की को कदाचित् पहली बार सच्चे स्नेह का ज्ञान हुआ। वह हाथ-पैर उछाल कर 'गूं-गूं' करने लगी और दीपक की ओर हाथ फैलाने लगी। उसे जीवन-ज्योति-सी मिल गयी।

प्रात:काल दामोदरदत्त ने लड़की को गोद में उठा लिया और बाहर लाये। स्त्री ने बार-बार कहा-उसे पड़ी रहने दो। ऐसी कौन-सी बड़ी सुन्दर है, अभागिन रात-दिन तो प्राण खाती रहती हैं, मर भी नहीं जाती कि जान छूट जाय; किंतु दामोदरदत्त ने न माना। उसे बाहर लाये और अपने बच्चों के साथ बैठकर खेलाने लगे। उनके मकान के सामने थोड़ी-सी जमीन पड़ी हुई थी। पड़ोस के किसी आदमी की एकबकरी उसमें आकर चरा करती थी। इस समय भी वह चर रही थी। बाबू साहब ने बड़े लड़के से कहा-सिद्धू जरा उस बकरी को पकड़ो, तो इसे दूध पिलायें, शायद भूखी है बेचारी! देखो, तुम्हारी नन्हीं-सी बहन है न? इसे रोज हवा में खेलाया करो।

सिद्धु को दिल्लगी हाथ आयी। उसका छोटा भाई भी दौड़ा। दोनो ने घेर कर बकरी को पकड़ा और उसका कान पकड़े हुए सामने लाये। पिता ने शिशु का मुंह बकरी थन में लगा दिया। लड़की चुबलाने लगी और एक क्षण में दूध की धार उसके मुंह में जाने लगी, मानो टिमटिमाते दीपक में तेल पड़ जाये। लड़की का मुंह खिल उठा। आज शायद पहली बार उसकी क्षुधा तृप्त हुई थी। वह पिता की गोद में हुमक-हुमक कर खेलने लगी। लड़कों ने भी उसे खूब नचाया-कुदाया।

उस दिन से सिद्धु को मनोंरजन का एक नया विषय मिल गया। बालकों को बच्चों से बहुत प्रेम होता है। अगर किसी घोंसनले में चिड़िया का बच्चा देख पायं तो बार-बार वहां जायेंगे। देखेंगें कि माता बच्चे को कैसे दाना चुगाती है। बच्चा कैसे चोंच खोलता हैं। कैसे दाना लेते समय परों को फड़फड़ाकर कर चें-चें करता है। आपस में बड़े गम्भीर भाव से उसकी चरचा करेंगे, उपने अन्य साथियों को ले जाकर उसे दिखायेंगे। सिद्धू ताक में लगा देता, कभी दिन में दो-दो तीन-तीन बा पिलाता। बकरी को भूसी चोकर खिलाकार ऐसा परचा लिया कि वह स्वयं चोकर के लोभ से चली आती और दूध देकर चली जाती। इस भांति कोई एक महीना गुजर गया, लड़की हृष्ट-पुष्ट हो गयी, मुख पुष्प के समान विकसित हो गया। आंखें जग उठीं, शिशुकाल की सरल आभा मन को हरने लगी।

माता उसको देख-देख कर चकित होती थी। किसी से कुछ कह तो न सकती; पर दिल में आशंका होती थी कि अब वह मरने की नहीं, हमीं लोगों के सिर जायेगी। कदाचित् ईश्वर इसकी रक्षा कर रहे हैं, जभी तो दिन-दिन निखरती आती है, नहीं, अब तक ईश्वर के घर पहुंच गयी होती।

3

मगर दादी माता से कहीं जयादा चिंतित थी। उसे भ्रम होने लगा कि वह बच्चे को खूब दूध पिला रही हैं, सांप को पाल रही है। शिशु की ओर आंख उठाकर भी न देखती। यहां तक कि एक दिन कह बैठी-लड़की का बड़ा छोह करती हो? हां

भाई, मां हो कि नहीं, तुम न छोह करोगी, तो करेगा कौन?

'अम्मा जी, ईश्वर जानते हैं जो मैं इसे दूध पिलाती होऊं?'

'अरे तो मैं मना थोड़े ही करती हूं, मुझे क्या गरज पड़ी है कि मुफ्त में अपने ऊपर पाप लूं, कुछ मेरे सिर तो जायेगी नहीं।'

'अब आपको विश्वास ही न आये तो क्या करें?'

'मुझे पागल समझती हो, वह हवा पी-पी कर ऐसी हो रही है?'

'भगवान् जाने अम्मा, मुझे तो अचरज होता है।'

बहू ने बहुत निर्दोषिता जतायी; किंतु वृद्धा सास को विश्वास न आया। उसने समझा, वह मेरी शंका को निर्मूल समझती है, मानों मुझे इस बच्ची से कोई बैर है। उसके मन में यह भाव अंकुरित होने लगा कि इसे कुछ हो जोये तब यह समझे कि मैं झूठ नहीं कहती थी। वह जिन प्राणियों को अपने प्राणों से भी अधिक समझती थीं। उन्हीं लोगों की अमंगल कामना करने लगी, केवल इसलिए कि मेरी शंकाएं सत्य हा जायं। वह यह तो नहीं चाहती थी कि कोई मर जाय; पर इतना अवश्य चाहती थी कि किसी के बहाने से मैं चेता दूं कि देखा, तुमने मेरा कहा न माना, यह उसी का फल है। उधर सास की ओर से ज्यो-ज्यों यह द्वेष-भाव प्रकट होता था, बहू का कन्या के प्रति स्नेह बढ़ता था। ईश्वर से मनाती रहती थी कि किसी भांति एक साल कुशल से कट जाता तो इनसे पूछती। कुछ लड़की का भोला-भाला चेहरा, कुछ अपने पति का प्रेम-वात्सल्य देखकर भी उसे प्रोत्साहन मिलता था। विचित्र दशा हो रही थी, न दिल खोलकर प्यार ही कर सकती थी, न सम्पूर्ण रीति से निर्दय होते ही बनता था। न हंसते बनता था न रोते।

इस भांति दो महीने और गुजर गये और कोई अनिष्ट न हुआ। तब तो वृद्धा सासव के पेट में चूहें दौड़ने लगे। बहू को दो-चार दिन ज्वर भी नहीं जाता कि मेरी शंका की मर्यादा रह जाये। पुत्र भी किसी दिन पैरगाड़ी पर से नहीं गिर पड़ता, न बहू के मैके ही से किसी के स्वर्गवास की सुनावनी आती है। एक दिन दामोदरदत्त ने खुले तौर पर कह भी दिया कि अम्मा, यह सब ढकोसला है, तेंतेर लड़कियां क्या दुनिया में होती ही नहीं, तो सब के सब मां-बाप मर ही जाते है? अंत में उसने अपनी शंकाओं को यथार्थ सिद्ध करने की एक तरकीब सोच निकाली। एक दिन दामोदरदत्त स्कूल से आये तो देखा कि अम्मा जी खाट पर अचेत पड़ी हुई हैं, स्त्री अंगीठी में आग रखे उनकी छाती सेंक रही हैं और कोठरी के द्वार और खिड़कियां बंद है। घबरा कर कहा-अम्मा जी, क्या दशा है?
स्त्री-दोपहर ही से कलेजे में एक शूल उठ रहा है, बेचारी बहुत तड़फ रही है।

दामोदर-मैं जाकर डॉक्टर साहब को बुला लाऊं न.? देर करने से शायद रोग बढ़ जाय। अम्मा जी, अम्मा जी कैसी तबियत है?
माता ने आंखे खोलीं और कराहते हुए बोली-बेटा तुम आ गये?

अब न बचूंगी, हाय भगवान्, अब न बचूंगी। जैसे कोई कलेजे में बरछी चुभा रहा हो। ऐसी पीड़ा कभी न हुई थी। इतनी उम्र बीत गयी, ऐसी पीड़ा कभी न हुई।

स्त्री-वह कलमुही छोकरी न जाने किस मनहूस घड़ी में पैदा हुई।

सास-बेटा, सब भगवान करते है, यह बेचारी क्या जाने! देखो मैं मर जाऊं तो उसे कश्ट मत देना। अच्छा हुआ मेरे सिर आयीं किसी कके सिर तो जाती ही, मेरे ही सिर सही। हाय भगवान, अब न बचूंगी।

दामोदर-जाकर डॉक्टर बुला लाऊं? अभ्भी लौटा आता हूं।

माता जी को केवल अपनी बात की मर्यादा निभानी थी, रूपये न खच्र कराने थे, बोली-नहीं बेटा, डॉक्टर के पास जाकर क्या करोगे? अरे, वह कोई ईश्वर है। डॉक्टर

के पास जाकर क्या करोगें? अरे, वह कोई ईश्वर है। डॉक्टर अमृत पिला देगा, दस-बीस वह भी ले जायेगा! डॉक्टर-वैद्य से कुछ न होगा। बेटा, तुम कपड़े उतारो, मेरे पास बैठकर भागवत पढ़ो। अब न बचूंगी। अब न बचूंगी, हाय राम!

दामोदर-तेंतर बुरी चीज है। मैं समझता था कि ढकोसला है।

स्त्री-इसी से मैं उसे कभी नहीं लगाती थी।

माता-बेटा, बच्चों को आराम से रखना, भगवान तुम लोगों को सुखी रखें। अच्छा हुआ मेरे ही सिर गयी, तुम लोगों के सामने मेरा परलोक हो जायेगा। कहीं किसी दूसरे के सिर जाती तो क्या होता राम! भगवान् ने मेरी विनती सुन ली। हाय! हाय!!
दामोदरदत्त को निश्चय हो गया कि अब अम्मा न बचेंगी। बड़ा दुःख हुआ। उनके मन की बात होती तो वह मां के बदले तेंतर को न स्वीकार करते। जिस जननी ने जन्म दिया, नाना प्रकार के कष्ट झेलकर उनका पालन-पोषण किया, अकाल वैधव्य को प्राप्त होकर भी उनकी शिक्षा का प्रबंध किया, उसके सामने एक दुधमुहीं बच्ची का कया मूल्य था, जिसके हाथ का एक गिलास पानी भी वह न जानते थे। शोकातुर हो कपड़े उतारे और मां के सिरहाने बैठकर भागवत की कथा सुनाने लगे।
रात को बहू भोजन बनाने चली तो सास से बोली-अम्मा जी, तुम्हारे लिए थोड़ा सा साबूदाना छोड़ दूं?

माता ने व्यंग्य करके कहा-बेटी, अन्य बिना न मारो, भला साबूदाना मुझसे खया जायेगा; जाओं, थोड़ी पूरियां छान लो। पड़े-पड़े जो कुछ इच्छा होगी, खा लूंगी, कचौरियां भी बना लेना। मरती हूं तो भोजन को तरस-तरस क्यों मरूं। थोड़ी मलाई भी मंगवा लेना, चौक की हो। फिर थोड़े खाने आऊंगी बेटी। थोड़े-से केले मंगवा लेना, कलेजे के दर्द में केले खाने से आराम होता है।

भोजन के समय पीड़ा शांत हो गयी; लेकिन आध घंटे बाद फिर जोर से होने लगी। आधी रात के समय कहीं जाकर उनकी आंख लगी। एक सप्ताह तक उनकी यही दशा रही, दिन-भर पड़ी कराहा करतीं बस भोजन के समय जरा वेदना कम हो जाती। दामोदरदत्त सिरहाने बैठे पंखा झलते और मातृवियोग के आगत शोक से रोते। घर की महरी ने मुहल्ले-भर में एक खबर फैला दी; पड़ोसिनें देखने आयीं, तो सारा इलजाम बालिका के सिर गया।

एक ने कहा-यह तो कहो बड़ी कुशल हुई कि बुढ़िया के सिर गयी; नहीं तो तेंतर मां-बाप दो में से एक को लेकर तभी शांत होती है। दैव न करे कि किसी के घर तेंतर का जन्म हो।

दूसरी बोली-मेरे तो तेंतर का नाम सुनते ही रोयें खड़े हो जाते है। भगवान् बांझ रखे पर तेंतर का जन्म न दें।

एक सप्ताह के बाद वृद्धा का कष्ट निवारण हुआ, मरने में कोई कसर न थी, वह तो कहों पुरूखाओं का पुण्य-प्रताप था। ब्राह्मणों को गोदान दिया गया। दुर्गा-पाठ हुआ, तब कहीं जाके संकट कटा।

***

नैराश्य

बाज आदमी अपनी स्त्री से इसलिए नाराज रहते हैं कि उसके लड़कियां ही क्यों होती हैं, लड़के क्यों नहीं होते। जानते हैं कि इनमें स्त्री को दोष नहीं है, या है तो उतना ही जितना मेरा, फिर भी जब देखिए स्त्री से रूठे रहते हैं, उसे अभागिनी कहते हैं और सदैव उसका दिल दुखाया करते हैं। निरुपमा उन्ही अभागिनी स्त्रियों में थी और घमंडीलाल त्रिपाठी उन्हीं अत्याचारी पुरुषों में। निरुपमा के तीन बेटियां लगातार हुई थीं और वह सारे घर की निगाहों से गिर गयी थी। सास-ससुर की अप्रसन्नता की तो उसे विशेष चिंता न थी, वह पुराने जमाने के लोग थे, जब लड़कियां गरदन का बोझ और पूर्वजन्मों का पाप समझी जाती थीं। हां, उसे दु:ख अपने पतिदेव की अप्रसन्नता का था जो पढ़े-लिखे आदमी होकर भी उसे जली-कटी सुनाते रहते थे। प्यार करना तो दूर रहा, निरुपमा से सीधे मुंह बात न करते, कई-कई दिनों तक घर ही में न आते और आते तो कुछ इस तरह खिंचे-तने हुए रहते कि निरुपमा थर-थर कांपती रहती थी, कहीं गरज न उठें। घर में धन का अभाव न था; पर निरुपमा को कभी यह साहस न होता था कि किसी सामान्य वस्तु की इच्छा भी प्रकट कर सके। वह समझती थी, में यथार्थ में अभागिनी हूं, नहीं तो भगवान् मेरी कोख में लड़कियां ही रचते। पति की एक मृदु मुस्कान के लिए, एक मीठी बात के लिए उसका हृदय तड़प कर रह जाता था। यहां तक कि वह अपनी लड़कियों को प्यार करते हुए सकुचाती थी कि लोग कहेंगे, पीतल की नथ पर इतना गुमान करती है। जब त्रिपाठी जी के घर में आने का समय होता तो किसी-न-किसी बहाने से वह लड़कियों को उनकी आंखों से दूर कर देती थी। सबसे बड़ी विपत्ति यह थी कि त्रिपाठी जी ने धमकी दी थी कि अब की कन्या हुई तो घर छोड़कर निकल जाऊंगा, इस नरक में क्षण-भर न ठहरूंगा। निरुपमा को यह चिंता और भी खाये जाती थी।

वह मंगल का व्रत रखती थी, रविवार, निर्जला एकादसी और न जाने कितने व्रत करती थी। स्नान-पूजा तो नित्य का नियम था; पर किसी अनुष्ठान से मनोकामना न पूरी होती थी। नित्य अवहेलना, तिरस्कार, उपेक्षा, अपमान सहते-

सहते उसका चित्त संसार से विरक्त होता जाता था। जहां कान एक मीठी बात के लिए, आंखें एक प्रेम-दृष्टि के लिए, हृदय एक आलिंगन के लिए तरस कर रह जाये, घर में अपनी कोई बात न पूछे, वहां जीवन से क्यों न अरुचि हो जाय? एक दिन घोर निराशा की दशा में उसने अपनी बड़ी भावज को एक पत्र लिखा। एक-एक अक्षर से असह्य वेदना टपक रही थी। भावज ने उत्तर दिया-तुम्हारे भैया जल्द तुम्हें विदा कराने जायेंगे। यहां आजकल एक सच्चे महात्मा आये हुए हैं जिनका आर्शीवाद कभी निष्फल नहीं जाता। यहां कई संतानहीन स्त्रियां उनक आर्शीवाद से पुत्रवती हो गयीं। पूर्ण आशा है कि तुम्हें भी उनका आर्शीवाद कल्याणकारी होगा।

निरुपमा ने यह पत्र पति को दिखाया। त्रिपाठी जी उदासीन भाव से बोले-सृष्टि-रचना महात्माओं के हाथ का काम नहीं, ईश्वर का काम है।

निरुपमा-हां, लेकिन महात्माओं में भी तो कुछ सिद्धि होती है।

घमंडीलाल-हां होती है, पर ऐसे महात्माओं के दर्शन दुर्लभ हैं।

निरुपमा-मैं तो इस महात्मा के दर्शन करुंगी।

घमंडीलाल-चली जाना।

निरुपमा-जब बांझिनों के लड़के हुए तो मैं क्या उनसे भी गयी-गुजरी हूं।

घमंडीलाल-कह तो दिया भाई चली जाना। यह करके भी देख लो। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, पुत्र का मुख देखना हमारे भाग्य में ही नहीं है।

2

कई दिन बाद निरुपमा अपने भाई के साथ मैके गयी। तीनों पुत्रियां भी साथ थीं। भाभी ने उन्हें प्रेम से गले लगाकर कहा, तुम्हारे घर के आदमी बड़े निर्दयी

हैं। ऐसी गुलाब -फूलों की-सी लड़कियां पाकर भी तकदीर को रोते हैं। ये तुम्हें भारी हों तो मुझे दे दो। जब ननद और भावज भोजन करके लेटीं तो निरुपमा ने पूछा-वह महात्मा कहां रहते हैं?

भावज-ऐसी जल्दी क्या है, बता दूंगी।

निरुपमा-है नगीच ही न?

भावज-बहुत नगीच। जब कहोगी, उन्हें बुला दूंगी।

निरुपमा-तो क्या तुम लोगों पर बहुत प्रसन्न हैं?

भावज-दोनों वक्त यहीं भोजन करते हैं। यहीं रहते हैं।

निरुपमा-जब घर ही में वैद्य तो मरिये क्यों? आज मुझे उनके दर्शन करा देना।

भावज-भेंट क्या दोगी?

निरुपमा-मैं किस लायक हूं?

भावज-अपनी सबसे छोटी लड़की दे देना।

निरुपमा-चलो, गाली देती हो।

भावज-अच्छा यह न सही, एक बार उन्हें प्रेमालिंगन करने देना।

निरुपमा-चलो, गाली देती हो।

भावज-अच्छा यह न सही, एक बार उन्हें प्रेमालिंगन करने देना।

निरुपमा-भाभी, मुझसे ऐसी हंसी करोगी तो मैं चली आऊंगी।

भावज-वह महात्मा बड़े रसिया हैं।

निरुपमा-तो चूल्हे में जायं। कोई दुष्ट होगा।

भावज-उनका आर्शीवाद तो इसी शर्त पर मिलेगा। वह और कोई भेंट स्वीकार ही नहीं करते।

निरुपमा-तुम तो यों बातें कर रही हो मानो उनकी प्रतिनिधि हो।

भावज-हां, वह यह सब विषय मेरे ही द्वारा तय किया करते हैं। मैं भेंट लेती हूं। मैं ही आर्शीवाद देती हूं, मैं ही उनके हितार्थ भोजन कर लेती हूं।

निरुपमा-तो यह कहो कि तुमने मुझे बुलाने के लिए यह हीला निकाला है।

भावज-नहीं, उनके साथ ही तुम्हें कुछ ऐसे गुर दूंगी जिससे तुम अपने घर आराम से रहा।

इसके बाद दोनों सखियों में कानाफूसी होने लगी। जब भावज चुप हुई तो निरुपमा बोली-और जो कहीं फिर क्या ही हुई तो?भावज-तो क्या? कुछ दिन तो शांति और सुख से जीवन कटेगा। यह दिन तो कोई लौटा न लेगा। पुत्र हुआ तो कहना ही क्या, पुत्री हुई तो फिर कोई नयी युक्ति निकाली जायेगी। तुम्हारे घर के जैसे अक्ल के दुश्मनों के साथ ऐसी ही चालें चलने से गुजारा है।

निरुपमा-मुझे तो संकोच मालूम होता है।

भावज-त्रिपाठी जी को दो-चार दिन में पत्र लिख देना कि महात्मा जी के दर्शन हुए और उन्होंने मुझे वरदान दिया है। ईश्वर ने चाहा तो उसी दिन से तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा होने लगी। घमंडी दौड़े हुए आयेंगे और तम्हारे ऊपर प्राण निछावर करेंगे। कम-से-कम साल भर तो चैन की वंशी बजाना। इसके बाद देखी जायेगी।

निरुपमा-पति से कपट करूं तो पाप न लगेगा?

भावज-ऐसे स्वार्थियों से कपट करना पुण्य है।

3

तीन चार महीने के बाद निरुपमा अपने घर आयी। घमंडीलाल उसे विदा कराने गये थे। सलहज ने महात्मा जी का रंग और भी चोखा कर दिया। बोली-ऐसा तो किसी को देखा नहीं कि इस महात्मा जी ने वरदान दिया हो और वह पूरा न हो गया हो। हां, जिसका भाग्य फूट जाये उसे कोई क्या कर सकता है।

घमंडीलाल प्रत्यक्ष तो वरदान और आर्शीवाद की उपेक्षा ही करते रहे, इन बातों पर विश्वास करना आजकल संकोचजनक मालूम होता ह; पर उनके दिल पर असर जरूर हुआ।

निरुपमा की खातिरदारियां होनी शुरू हुईं। जब वह गर्भवती हुई तो सबके दिलों में नयी-नयी आशाएं हिलोरें लेने लगी। सास जो उठते गाली और बैठते व्यंग्य से बातें करती थीं अब उसे पान की तरह फेरती-बेटी, तुम रहने दो, मैं ही रसोई बना लूंगी, तुम्हारा सिर दुखने लगेगा। कभी निरुपमा कलसे का पानी या चारपाई उठाने लगती तो सास दौड़ती-बहू,रहने दो, मैं आती हूं, तुम कोई भारी चीज मत उठाया करा। लड़कियों की बात और होती है, उन पर किसी बात का असर नहीं होता, लड़के तो गर्भ ही में मान करने लगते हैं। अब निरुपमा के लिए दूध का उठौना किया गया, जिससे बालक पुष्ट और गोरा हो। घमंडी वस्त्राभूषणों पर उतारू हो गये। हर महीने एक-न-एक नयी चीज लाते। निरुपमा का जीवन इतना सुखमय कभी न था। उस समय भी नहीं जब नवेली वधू थी।

महीने गुजरने लगे। निरूपमा को अनुभूत लक्षणों से विदित होने लगा कि यह कन्या ही है; पर वह इस भेद को गुप्त रखती थी। सोचती, सावन की धूप है, इसका क्या भरोसा जितनी चीज धूप में सुखानी हो सुखा लो, फिर तो घटा

छायेगी ही। बात-बात पर बिगड़ती। वह कभी इतनी मानशीला न थी। पर घर में कोई चूं तक न करता कि कहीं बहू का दिल न दुखे, नहीं बालक को कष्ट होगा। कभी-कभी निरुपमा केवल घरवालों को जलाने के लिए अनुष्ठान करती, उसे उन्हें जलाने में मजा आता था। वह सोचती, तुम स्वार्थियों को जितना जलाऊं उतना अच्छा! तुम मेरा आदर इसलिए करते हो न कि मैं बच्च जनूंगी जो तुम्हारे कुल का नाम चलायेगा। मैं कुछ नहीं हूं, बालक ही सब-कुछ है। मेरा अपना कोई महत्व नहीं, जो कुछ है वह बालक के नाते। यह मेरे पति हैं! पहले इन्हें मुझसे कितना प्रेम था, तब इतने संसार-लोलुप न हुए थे। अब इनका प्रेम केवल स्वार्थ का स्वांग है। मैं भी पशु हूं जिसे दूध के लिए चारा-पानी दिया जाता है। खैर, यही सही, इस वक्त तो तुम मेरे काबू में आये हो! जितने गहने बन सकें बनवा लूं, इन्हें तो छीन न लोगे।

इस तरह दस महीने पूरे हो गये। निरुपमा की दोनों ननदें ससुराल से बुलायी गयीं। बच्चे के लिए पहले ही सोने के गहने बनवा लिये गये, दूध के लिए एक सुन्दर दुधार गाय मोल ले ली गयी, घमंडीलाल उसे हवा खिलाने को एक छोटी-सी सेजगाड़ी लाये। जिस दिन निरूपमा को प्रसव-वेदना होने लगी, द्वार पर पंडित जी मुहूर्त देखने के लिए बुलाये गये। एक मीरशिकार बंदूक छोड़ने को बुलाया गया, गायनें मंगल-गान के लिए बटोर ली गयीं। घर से तिल-तिल कर खबर मंगायी जाती थी, क्या हुआ? लेडी डॉक्टर भी बुलायी गयीं। बाजे वाले हुक्म के इंतजार में बैठे थे। पामर भी अपनी सारंगी लिये 'जच्चा मान करे नंदलाल सों' की तान सुनाने को तैयार बैठा था। सारी तैयारियां; सारी आशाएं, सारा उत्साह समारोह एक ही शब्द पर अवलम्बि था। ज्यों-ज्यों देर होती थी लोगों में उत्सुकता बढ़ती जाती थी। घमंडीलाल अपने मनोभावों को छिपाने के लिए एक समाचार -पत्र देख रहे थे, मानो उन्हें लड़का या लड़की दोनों ही बराबर हैं। मगर उनके बूढ़े पिता जी इतने सावधान न थे। उनकी पीछें खिली जाती थीं, हंस-हंस कर सबसे बात कर रहे थे और पैसों की एक थैली को बार-बार उछालते थे।

मीरशिकार ने कहा-मालिक से अबकी पगड़ी दुपट्टा लूंगा।

पिताजी ने खिलकर कहा-अबे कितनी पगड़ियां लेगा? इतनी बेभाव की दूंगा कि सर के बाल गंजे हो जायेंगे।

पामर बोला-सरकार अब की कुछ जीविका लूं।

पिताजी खिलकर बोले-अबे कितनी खायेगा; खिला-खिला कर पेट फाड़ दूंगा।

सहसा महरी घर में से निकली। कुछ घबरायी-सी थी। वह अभी कुछ बोलने भी न पायी थी कि मीरशिकार ने बन्दूक फैर कर ही तो दी। बन्दूक छूटनी थी कि रोशन चौकी की तान भी छिड़ गयी, पामर भी कमर कसकर नाचने को खड़ा हो गया।
महरी-अरे तुम सब के सब भंग खा गये हो गया?

मीरशिकार-क्या हुआ?

महरी-हुआ क्या लड़की ही तो फिर हुई है?

पिता जी-लड़की हुई है?

यह कहते-कहते वह कमर थामकर बैठ गये मानो वज्र गिर पड़ा। घमंडीलाल कमरे से निकल आये और बोले-जाकर लेडी डाक्टर से तो पूछ। अच्छी तरह देख न ले। देखा सुना, चल खड़ी हुई।

महरी-बाबूजी, मैंने तो आंखों देखा है!

घमंडीलाल-कन्या ही है?

पिता-हमारी तकदीर ही ऐसी है बेटा! जाओ रे सब के सब! तुम सभी के भाग्य में कुछ पाना न लिखा था तो कहां से पाते। भाग जाओ। सैंकड़ों रुपये पर पानी फिर गया, सारी तैयारी मिट्टी में मिल गयी।

घमंडीलाल-इस महात्मा से पूछना चाहिए। मैं आज डाक से जरा बचा की खबर लेता हूं।

पिता-धूर्त है, धूर्त!

घमंडीलाल-मैं उनकी सारी धूर्तता निकाल दूंगा। मारे डंडों के खोपड़ी न तोड़ दूं तो कहिएगा। चांडाल कहीं का! उसके कारण मेरे सैंकड़ों रुपये पर पानी फिर गया। यह सेजगाड़ी, यह गाय, यह पलना, यह सोने के गहने किसके सिर पटकूं। ऐसे ही उसने कितनों ही को ठगा होगा। एक दफा बचा ही मरम्मत हो जाती तो ठीक हो जाते।

पिता जी-बेटा, उसका दोष नहीं, अपने भाग्य का दोष है।

घमंडीलाल-उसने क्यों कहा ऐसा नहीं होगा। औरतों से इस पाखंड के लिए कितने ही रुपये ऐंठे होंगे। वह सब उन्हें उगलना पड़ेगा, नहीं तो पुलिस में रपट कर दूंगा। कानून में पाखंड का भी तो दंड है। मैं पहले ही चौंका था कि हो न हो पाखंडी है; लेकिन मेरी सलहज ने धोखा दिया, नहीं तो मैं ऐसे पाजियों के पंजे में कब आने वाला था। एक ही सुअर है।

पिताजी-बेटा सब्र करो। ईश्वर को जो कुछ मंजूर था, वह हुआ। लड़का-लड़की दोनों ही ईश्वर की देन है, जहां तीन हैं वहां एक और सही।

पिता और पुत्र में तो यह बातें होती रहीं। पामर, मीरशिकार आदि ने अपने-अपने डंडे संभाले और अपनी राह चले। घर में मातम-सा छा गया, लेडी डॉक्टर भी विदा कर दी गयी, सौर में जच्चा और दाई के सिवा कोई न रहा। वृद्धा माता तो इतनी हताश हुई कि उसी वक्त अटवास-खटवास लेकर पड़ रहीं।

जब बच्चे की बरही हो गयी तो घमंडीलाल स्त्री के पास गये और सरोष भाव से बोले-फिर लड़की हो गयी!

निरुपमा-क्या करूं, मेरा क्या बस?

घमंडीलाल-उस पापी धूर्त ने बड़ा चकमा दिया।

निरुपमा-अब क्या कहें, मेरे भाग्य ही में न होगा, नहीं तो वहां कितनी ही औरतें बाबाजी को रात-दिन घेरे रहती थीं। वह किसी से कुछ लेते तो कहती कि धूर्त हैं, कसम ले लो जो मैंने एक कौड़ी भी उन्हें दी हो।

घमंडीलाल-उसने लिया या न लिया, यहां तो दिवाला निकल गया। मालूम हो गया तकदीर में पुत्र नहीं लिखा है। कुल का नाम डूबना ही है तो क्या आज डूबा, क्या दस साल बाद डूबा। अब कहीं चला जाऊंगा, गृहस्थी में कौन-सा सुख रखा है।
वह बहुत देर तक खड़े-खड़े अपने भाग्य को रोते रहे; पर निरुपमा ने सिर तक न उठाया।

निरुपमा के सिर फिर वही विपत्ति आ पड़ी, फिर वही ताने, वही अपमान, वही अनादर, वही छीछालेदार, किसी को चिंता न रहती कि खाती-पीती है या नहीं, अच्छी है या बीमार, दुखी है या सुखी। घमंडीलाल यद्यपि कहीं न गये, पर निरूपमा को यही धमकी प्राय: नित्य ही मिलती रहती थी। कई महीने यों ही गुजर गये तो निरूपमा ने फिर भावज को लिखा कि तुमने और भी मुझे विपत्ति में डाल दिया। इससे तो पहले ही भली थी। अब तो काई बात भी नहीं पूछता कि मरती है या जीती है। अगर यही दशा रही तो स्वामी जी चाहे संन्यास लें या न लें, लेकिन मैं संसार को अवश्य त्याग दूंगी।

4

भाभी यह पत्र पाकर परिस्थिति समझ गयी। अबकी उसने निरुपमा को बुलाया नहीं, जानती थी कि लोग विदा ही न करेंगे, पति को लेकर स्वयं आ पहुंची।

उसका नाम सुकेशी था। बड़ी मिलनसार, चतुर विनोदशील स्त्री थी। आते ही आते निरुपमा की गोद में कन्या देखी तो बोली-अरे यह क्या?

सास-भाग्य है और क्या?

सुकेशी-भाग्य कैसा? इसने महात्मा जी की बातें भुला दी होंगी। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि वह मुंह से जो कुछ कह दें, वह न हो। क्यों जी, तुमने मंगल का व्रत रखा?

निरुपमा-बराबर, एक व्रत भी न छोड़ा।

सुकेशी-पांच ब्राह्मणों को मंगल के दिन भोजन कराती रही?

निरुपमा-यह तो उन्होंने नहीं कहा था।

सुकेशी-तुम्हारा सिर, मुझे खूब याद है, मेरे सामने उन्होंने बहुत जोर देकर कहा था। तुमने सोचा होगा, ब्राह्मणों को भोजन कराने से क्या होता है। यह न समझा कि कोई अनुष्ठान सफल नहीं होता जब तक विधिवत् उसका पालन न किया जाये।

सास-इसने कभी इसकी चर्चा ही नहीं की;नहीं;पांच क्या दस ब्राह्मणों को जिमा देती। तुम्हारे धर्म से कुछ कमी नहीं है।

सुकेशी-कुछ नहीं, भूल हो गयी और क्या। रानी, बेटे का मुंह यों देखना नसीब नहीं होता। बड़े-बड़े जप-तप करने पड़ते हैं, तुम मंगल के व्रत ही से घबरा गयीं?

सास-अभागिनी है और क्या?

घमंडीलाल-ऐसी कौन-सी बड़ी बातें थीं, जो याद न रहीं? वह हम लोगों को जलाना चाहती है।

सास-वही तो कहूं कि महात्मा की बात कैसे निष्फल हुई। यहां सात बरसों ते 'तुलसी माई' को दिया चढ़ाया, जब जा के बच्चे का जन्म हुआ।

घमंडीलाल-इन्होंने समझा था दाल-भात का कौर है!

सुकेशी-खैर, अब जो हुआ सो हुआ कल मंगल है, फिर व्रत रखो और अब की सात ब्राह्मणों को जिमाओ, देखें, कैसे महात्मा जी की बात नहीं पूरी होती।

घमंडीलाल-व्यर्थ है, इनके किये कुछ न होगा।

सुकेशी-बाबूजी, आप विद्वान समझदार होकर इतना दिल छोटा करते हैं। अभी आपककी उम्र क्या है। कितने पुत्र लीजिएगा? नाकों दम न हो जाये तो कहिएगा।

सास-बेटी, दूध-पूत से भी किसी का मन भरा है।

सुकेशी-ईश्वर ने चाहा तो आप लोगों का मन भर जायेगा। मेरा तो भर गया।

घमंडीलाल-सुनती हो महारानी, अबकी कोई गोलमोल मत करना। अपनी भाभी से सब ब्योरा अच्छी तरह पूछ लेना।

सुकेशी-आप निश्चिंत रहें, मैं याद करा दूंगी; क्या भोजन करना होगा, कैसे रहना होगा कैसे स्नान करना होगा, यह सब लिखा दूंगी और अम्मा जी, आज से अठारह मास बाद आपसे कोई भारी इनाम लूंगी।

सुकेशी एक सप्ताह यहां रही और निरुपमा को खूब सिखा-पढ़ा कर चली गयी।

5

निरुपमा का एकबाल फिर चमका, घमंडीलाल अबकी इतने आश्वासित से रानी हुई, सास फिर उसे पान की भांति फेरने लगी, लोग उसका मुंह जोहने लगे।

दिन गुजरने लगे, निरुपमा कभी कहती अम्मां जी, आज मैंने स्वप्न देखा कि वृद्ध स्त्री ने आकर मुझे पुकारा और एक नारियल देकर बोली, 'यह तुम्हें दिये जाती हूं; कभी कहती,'अम्मां जी, अबकी न जाने क्यों मेरे दिल में बड़ी-बड़ी उमंगें पैदा हो रही हैं, जी चाहता है खूब गाना सुनूं, नदी में खूब स्नान करूं, हरदम नशा-सा छाया रहता है। सास सुनकर मुस्कराती और कहती-बहू ये शुभ लक्षण हैं।

निरुपमा चुपके-चुपके माजूर मंगाकर खाती और अपने असल नेत्रों से ताकते हुए घमंडीलाल से पूछती-मेरी आंखें लाल हैं क्या?

घमंडीलाल खुश होकर कहते-मालूम होता है, नशा चढ़ा हुआ है। ये शुभ लक्षण हैं।

निरुपमा को सुगंधों से कभी इतना प्रेम न था, फूलों के गजरों पर अब वह जान देती थी।

घमंडीलाल अब नित्य सोते समय उसे महाभारत की वीर कथाएं पढ़कर सुनाते, कभी गुरु गोविंदसिंह कीर्ति का वर्णन करते। अभिमन्यु की कथा से निरुपमा को बड़ा प्रेम था। पिता अपने आने वाले पुत्र को वीर-संस्कारों से परिपूरित कर देना चाहता था।

एक दिन निरुपमा ने पति से कहा-नाम क्या रखोगे?

घमंडीलाल-यह तो तुमने खूब सोचा। मुझे तो इसका ध्यान ही न रहा। ऐसा नाम होना चाहिए जिससे शौर्य और तेज टपके। सोचो कोई नाम।

दोनों प्राणी नामों की व्याख्या करने लगे। जोरावरलाल से लेकर हरिश्चन्द्र तक सभी नाम गिनाये गये, पर उस असामान्य बालक के लिए कोई नाम न मिला। अंत में पति ने कहा तेगबहादुर कैसा नाम है।

निरुपमा-बस-बस, यही नाम मुझे पसन्द है?

घमंडी लाल-नाम ही तो सब कुछ है। दमड़ी, छकौड़ी, घुरहू, कतवारू, जिसके नाम देखे उसे भी 'यथा नाम तथा गुण' ही पाया। हमारे बच्चे का नाम होगा तेगबहादुर।

6

प्रसव-काल आ पहुंचा। निरुपमा को मालूम था कि क्या होने वाली है; लेकिन बाहर मंगलाचरण का पूरा सामान था। अबकी किसी को लेशमात्र भी संदेह न था। नाच, गाने का प्रबंध भी किया गया था। एक शामियाना खड़ा किया गया था और मित्रगण उसमें बैठे खुश-गप्पियां कर रहे थे। हलवाई कड़ाई से पूरियां और मिठाइयां निकाल रहा था। कई बोरे अनाज के रखे हुए थे कि शुभ समाचार पाते ही भिक्षुकों को बांटे जायें। एक क्षण का भी विलम्ब न हो, इसलिए बोरों के मुंह खोल दिये गये थे।

लेकिन निरुपमा का दिल प्रतिक्षण बैठा जाता था। अब क्या होगा? तीन साल किसी तरह कौशल से कट गये और मजे में कट गये, लेकिन अब विपत्ति सिर पर मंडरा रही है। हाय! निरपराध होने पर भी यही दंड! अगर भगवान् की इच्छा है कि मेरे गर्भ से कोई पुत्र न जन्म ले तो मेरा क्या दोष! लेकिन कौन सुनता है। मैं ही अभागिनी हूं मैं ही त्याज्य हूं मैं ही कलमुंही हूं इसीलिए न कि परवश हूं! क्या होगा? अभी एक क्षण में यह सारा आनंदात्सव शोक में डूब जायेगा, मुझ पर बौछारें पड़ने लगेंगी, भीतर से बाहर तक मुझी को कोसेंगे, सास-ससुर का भय नहीं, लेकिन स्वामी जी शायद फिर मेरा मुंह न देखें, शायद निराश होकर घर-बार त्याग दें। चारों तरफ अमंगल ही अमंगल हैं मैं अपने घर की, अपनी संतान की दुर्दशा देखने के लिए क्यों जीवित हूं। कौशल बहुत हो चुका, अब उससे कोई आशा नहीं। मेरे दिल में कैसे-कैसे अरमान थे। अपनी प्यारी बच्चियों का लालन-पालन करती, उन्हें ब्याहती, उनके बच्चों को देखकर सुखी होती। पर आह! यह सब अरमान झाक में मिले जाते हैं। भगवान्! तुम्ही अब इनके पिता हो, तुम्हीं इनके रक्षक हो। मैं तो अब जाती हूं।

लेडी डॉक्टर ने कहा-वेल! फिर लड़की है।

भीतर-बाहर कुहराम मच गया, पिट्टस पड़ गयी। घमंडीलाल ने कहा-जहन्नुम में जाये ऐसी जिंदगी, मौत भी नहीं आ जाती!

उनके पिता भी बोले-अभागिनी है, वज्र अभागिनी!

भिक्षुकों ने कहा-रोओ अपनी तकदीर को हम कोई दूसरा द्वार देखते हैं।

अभी यह शोकादगार शांत न होने पाया था कि डॉक्टर ने कहा मां का हाल अच्छा नहीं है। वह अब नहीं बच सकती। उसका दिल बंद हो गया है।

***

दंड

संध्या का समय था। कचहरी उठ गयी थी। अहलकार चपरासी जेबें खनखनाते घर जा रहे थे। मेहतर कूड़े टटोल रहा था कि शायद कहीं पैसे मिल जायें। कचहरी के बरामदों में सांडों ने वकीलों की जगह ले ली थी। पेड़ों के नीचे मुहर्रिरों की जगह कुत्ते बैठे नजर आते थे। इसी समय एक बूढ़ा आदमी, फटे-पुराने कपड़े पहने, लाठी टेकता हुआ, जंट साहब के बंगले पर पहुंचा और सायबान में खड़ा हो गया। जंट साहब का नाम था मिस्टर जी0 सिनहा। अरदली ने दूर ही से ललकारा—कौन सायबान में खड़ा है? क्या चाहता है।

बूढ़ा—गरीब बाम्हान हूं भैया, साहब से भेंट होगी?

अरदली—साहब तुम जैसों से नहीं मिला करते।

बूढ़े ने लाठी पर अकड़ कर कहा—क्यों भाई, हम खड़े हैं या डाकू-चोर हैं कि हमारे मुंह में कुछ लगा हुआ है?

अरदली—भीख मांग कर मुकदमा लड़ने आये होंगे?

बूढ़ा—तो कोई पाप किया है? अगर घर बेचकर नहीं लड़ते तो कुछ बुरा करते हैं? यहां तो मुकदमा लड़ते-लड़ते उमर बीत गयी; लेकिन घर का पैसा नहीं खरचा। मियां की जूती मियां का सिर करते हैं। दस भलेमानसों से मांग कर एक को दे दिया। चलो छुट्टी हुई। गांव भर नाम से कांपता है। किसी ने जरा भी टिर-पिर की और मैंने अदालत में दावा दायर किया।

अरदली—किसी बड़े आदमी से पाला नहीं पड़ा अभी?

बूढ़ा—अजी, कितने ही बड़ों को बड़े घर भिजवा दिया, तूम हो किस फेर में। हाई-कोर्ट तक जाता हूं सीधा। कोई मेरे मुंह क्या आयेगा बेचारा! गांव से तो

कौड़ी जाती नहीं, फिर डरें क्यों? जिसकी चीज पर दांत लगाये, अपना करके छोड़ा। सीधे न दिया तो अदालत में घसीट लाये और रगेद-रगेद कर मारा, अपना क्या बिगड़ता है? तो साहब से उत्तला करते हो कि मैं ही पुकारूं?

अरदली ने देखा; यह आदमी यों टलनेवाला नहीं तो जाकर साहब से उसकी इत्तला की। साहब ने हुलिया पूछा और खुश होकर कहा—फौरन बुला लो।

अरदली—हजूर, बिलकुल फटेहाल है।

साहब—गुदड़ी ही में लाल होते हैं। जाकर भेज दो।

मिस्टर सिनहा अधेड़ आदमी थे, बहुत ही शांत, बहुत ही विचारशील। बातें बहुत कम करते थे। कठोरता और असभ्यता, जो शासन की अंग समझी जाती हैं, उनको छु भी नहीं गयी थी। न्याय और दया के देवता मालूम होते थे। डील-डौल देवों का-सा था और रंग आबनूस का-सा। आराम-कुर्सी पर लेटे हुए पेचवान पी रहे थे। बूढ़े ने जाकर सलाम किया।

सिनहा—तुम हो जगत पांडे! आओ बैठो। तुम्हारा मुकदमा तो बहुत ही कमजोर है। भले आदमी, जाल भी न करते बना?

जगत—ऐसा न कहें हजूर, गरीब आदमी हूं, मर जाऊंगा।

सिनहा—किसी वकील मुख्तार से सलाह भी न ले ली?

जगत—अब तो सरकार की सरन में आया हूं।

सिनहा—सरकार क्या मिसिल बदल देंगे; या नया कानून गढ़ेंगे? तुम गच्चा खा गये। मैं कभी कानून के बाहर नहीं जाता। जानते हो न अपील से कभी मेरी तजवीज रद्द नहीं होती?

जगत—बड़ा धरम होगा सरकार! (सिनहा के पैरों पर गिन्नियों की एक पोटली रखकर) बड़ा दुखी हूं सरकार!

सिनहा—(मुस्करा कर) यहां भी अपनी चालबाजी से नहीं चूकते? निकालो अभी और, ओस से प्यास नहीं बुझती। भला दहाई तो पूरा करो।

जगत—बहुत तंग हूं दीनबंधु!

सिनहा—डालो-डालो कमर में हाथ। भला कुछ मेरे नाम की लाज तो रखो।

जगत—लुट जाऊंगा सरकार!

सिनहा—लुटें तुम्हारे दुश्मन, जो इलाका बेचकर लड़ते हैं। तुम्हारे जजमानों का भगवान भला करे, तुम्हें किस बात की कमी है।

मिस्टर सिनहा इस मामले में जरा भी रियायत न करते थे। जगत ने देखा कि यहाँ काइयांपन से काम चलेगा तो चुपके से 4 गिन्नियां और निकालीं। लेकिन उन्हें मिस्टर सिनहा के पैरों रखते समय उसकी आंखों से खून निकल आया। यह उसकी बरसों की कमाई थी। बरसों पेट काटकर, तन जलाकर, मन बांधकर, झुठी गवाहियां देकर उसने यह थाती संचय कर पायी थी। उसका हाथों से निकलना प्राण निकलने से कम दुखदायी न था।

जगत पांडे के चले जाने के बाद, कोई 9 बजे रात को, जंट साहब के बंगले पर एक तांगा आकर रुका और उस पर से पंडित सत्यदेव उतरे जो राजा साहब शिवपुर के मुख्तार थे।

मिस्टर सिनहा ने मुस्कराकर कहा—आप शायद अपने इलाके में गरीबों को न रहने देंगे। इतना जुल्म!

सत्यदेव—गरीब परवर, यह कहिए कि गरीबों के मारे अब इलाके में हमारा रहना मुश्किल हो रहा है। आप जानते हैं, साधी उंगली से घी नहीं निकलता। जमींदार को कुछ-न-कुछ सख्ती करनी ही पड़ती है, मगर अब यह हाल है कि हमने जरा चूं भी की तो उन्हीं गरीबों की त्योरियां बदल जाती हैं। सब मुफ्त में जमीन जोतना चाहते हैं। लगान मांगिये तो फौजदारी का दावा करने को तैयार! अब इसी जगत पांडे को देखिए, गंगा कसम है हुजूर सरासर झूठा दावा है। हुजूर से कोई बात छिपी तो रह नहीं सकती। अगर जगत पांडे मुकदमा जीत गया तो हमें बोरियां-बंधना छोड़कर भागना पड़ेगा। अब हुजूर ही बसाएं तो बस सकते हैं। राजा साहब ने हुजूर को सलाम कहा है और अर्ज की है हक इस मामले में जगत पांडे की ऐसी खबर लें कि वह भी याद करे।

मिस्टर सिनहा ने भवें सिकोड़ कर कहा—कानून मेरे घर तो नहीं बनता?

सत्यदेव—आपके हाथ में सब कुछ है।

यह कहकर गिन्नियों की एक गड्डी निकाल कर मेज पर रख दी। मिस्टर सिनहा ने गड्डी को आंखों से गिनकर कहा—इन्हें मेरी तरफ से राजा साहब को नजर कर दीजिएगा। आखिर आप कोई वकील तो करेंगे। उसे क्या दीजिएगा?

सत्यदेव—यह तो हुजूर के हाथ में है। जितनी ही पेशियां होंगी उतना ही खर्च भी बढ़ेगा।

सिनहा—मैं चाहूं तो महीनों लटका सकता हूं।

सत्यदेव—हां, इससे कौन इनकार कर सकता है।
सिनहा—पांच पेशियां भी हुयीं तो आपके कम से कम एक हजार उड़ जायेंगे। आप यहां उसका आधा पूरा कर दीजिए तो एक ही पेशी में वारा-न्यारा हो जाए। आधी रकम बच जाय।

सत्यदेव ने 10 गिन्नियां और निकाल कर मेज पर रख दीं और घमंड के साथ बोले—हुक्म हो तो राजा साहब कह दूं, आप इत्मीनान रखें, साहब की कृपादृष्टि हो गयी है।

मिस्टर सिनहा ने तीव्र स्वर में कहा 'जी नहीं, यह कहने की जरूरत नहीं। मैं किसी शर्त पर यह रकम नहीं ले रहा। मैं करूंगा वही जो कानून की मंशा होगी। कानून के खिलाफ जौ-भर भी नहीं जा सकता। यही मेरा उसूल है। आप लोग मेरी खातिर करते हैं, यह आपकी शरारत है। उसे अपना दुश्मन समझूंगा जो मेरा ईमान खरीदना चाहे। मैं जो कुछ लेता हूं, सच्चाई का इनाम समझ कर लेता हूं।'

2

जगत पांडे को पूरा विश्वास था कि मेरी जीत होगी; लेकिन तजबीज सुनी तो होश उड़ गये! दावा खारिज हो गया! उस पर खर्च की चपत अलग। मेरे साथ यह चाल! अगर लाला साहब को इसका मजा न चखा दिया, तो बाम्हन नहीं। हैं किस फेर में? सारा रोब भुला दूंगा। वहां गाढ़ी कमाई के रुपये हैं। कौन पचा सकता है? हाड़ फोड़-फोड़ कर निकलेंगे। द्वार पर सिर पटक-पटक कर मर जाऊंगा।

उसी दिन संध्या को जगत पांडे ने मिस्टर सिनहा के बंगले के सामने आसन जमा दिया। वहां बरगद का घना वृक्ष था। मुकदमेवाले वहीं सत्तू, चबेना खाते ओर दोपहरी उसी की छांह में काटते थे। जगत पांडे उनसे मिस्टर सिनहा की दिल खोलकर निंदा करता। न कुछ खाता न पीता, बस लोगों को अपनी रामकहानी सुनाया करता। जो सुनता वह जंट साहब को चार खोटी-खरी कहता—आदमी नहीं पिशाच है, इसे तो ऐसी जगह मारे जहां पानी न मिले। रुपये के रुपये लिए, ऊपर से खरचे समेत डिग्री कर दी! यही करना था तो रुपये काहे को निकले थे? यह है हमारे भाई-बंदों का हाल। यह अपने कहलाते हैं! इनसे तो

अंग्रेज ही अच्छे। इस तरह की आलोचनाएं दिन-भर हुआ करतीं। जगत पांडे के आस-पास आठों पहर जमघट लगा रहता।

इस तरह चार दिन बीत गये और मिस्टर सिनहा के कानों में भी बात पहुंची। अन्य रिश्वती कर्मचारियों की तरह वह भी हेकड़ आदमी थे। ऐसे निर्द्वंद्व रहते मानो उन्हें यह बीमारी छू तक नहीं गयी है। जब वह कानून से जौ-भर भी न टलते थे तो उन पर रिश्वत का संदेह हो ही क्योंकर सकता था, और कोई करता भी तो उसकी मानता कौन! ऐसे चतुर खिलाड़ी के विरुद्ध कोई जाब्ते की कार्रवाई कैसे होती? मिस्टर सिनहा अपने अफसरों से भी खुशामद का व्यवहार न करते। इससे हुक्काम भी उनका बहुत आदर करते थे। मगर जगत पांडे ने वह मंत्र मारा था जिसका उनके पास कोई उत्तर न था। ऐसे बांगड़ आदमी से आज तक उन्हें साबिका न पड़ा था। अपने नौकरों से पूछते—बुड्ढा क्या कर रहा है। नौकर लोग अपनापन जताने के लिए झूठ के पुल बांध देते—हुजूर, कहता था भूत बन कर लगूंगा, मेरी वेदी बने तो सही, जिस दिन मरूंगा उस दिन के सौ जगत पांडे होंगे। मिस्टर सिनहा पक्के नास्तिक थे; लेकिन ये बातें सुन-सुनकर सशंक हो जाते, और उनकी पत्नी तो थर-थर कांपने लगतीं। वह नौकरों से बार-बार कहती उससे जाकर पूछो, क्या चाहता है। जितना रुपया चाहे ले, हमसे जो मांगे वह देंगे, बस यहां से चला जाय, लेकिन मिस्टर सिनहा आदमियों को इशारे से मना कर देते थे। उन्हें अभी तक आशा थी कि भूख-प्यास से व्याकुल होकर बुड्ढा चला जायगा। इससे अधिक भय यह था कि मैं जरा भी नरम पड़ा और नौकरों ने मुझे उल्लू बनाया।

छठे दिन मालूम हुआ कि जगत पांडे अबोल हो गया है, उससे हिला तक नहीं जाता,चुपचाप पड़ा आकाश की ओर देख रहा है। शायद आज रात दम निकल जाय। मिस्टर सिनहा ने लंबी सांस ली और गहरी चिंता में डूब गये। पत्नी ने आंखों में आंसू भरकर आग्रहपूर्वह कहा—तुम्हें मेरे सिर की कसम, जाकर किसी इस बला को टालो। बुड्ढा मर गया तो हम कहीं के न रहेंगे। अब रुपये

का मुंह मत देखो। दो-चार हजार भी देने पड़ें तो देकर उसे मनाओ। तुमको जाते शर्म आती हो तो मैं चली जाऊं।

सिनहा—जाने का इरादा तो मैं कई दिन से कर रहा हूं; लेकिन जब देखता हूं वहां भीड़ लगी रहती है, इससे हिम्मत नहीं पड़ती। सब आदमियों के सामने तो मुझसे न जाया जायगा, चाहे कितनी ही बड़ी आफत क्यों न आ पड़े। तुम दो-चार हजार की कहती हो, मैं दस-पांच हजार देने को तैयार हूं। लेकिन वहां नहीं जा सकता। न जाने किस बुरी साइत से मैंने इसके रुपये लिए। जानता कि यह इतना फिसाद खड़ा करेगा तो फाटक में घुसने ही न देता। देखने में तो ऐसा सीधा मालूम होता था कि गऊ है। मैंने पहली बार आदमी पहचानने में धोखा खाया।

पत्नी—तो मैं ही चली जाऊं? शहर की तरफ से आऊंगी और सब आदमियों को हटाकर अकेले में बात करुंगी। किसी को खबर न होगी कि कौन है। इसमें तो कोई हरज नहीं है?

मिस्टर सिनहा ने संदिग्ध भाव से कहा-ताड़ने वाले ताड़ ही जायेंगे, वाहे तुम कितना ही छिपाओ।

पत्नी—ताड़ जायेंगे ताड़ जायें, अब किससे कहां तक डरुं। बदनामी अभी क्या कम हो रही है,जो और हो जायगी। सारी दुनिया जानती है कि तुमने रुपये लिए। यों ही कोई किसी पर प्राण नहीं देता। फिर अब व्यर्थ ऐंथ क्यों करो?

मिस्टर सिनहा अब मर्मवेदना को न दबा सके। बोले—प्रिये, यह व्यर्थ की ऐंठ नहीं है। चोर को अदालत में बेंत खाने से उतनी लज्जा नहीं आती, जितनी किसी हाकिम को अपनी रिश्वत का परदा खुलने से आती है। वह जहर खा कर मर जायगा; पर संसार के सामने अपना परदा न खोलेगा। अपना सर्वनाश देख सकता है; पर यह अपमान नहीं सह सकता, जिंदा खाल खींचने, या कोल्हू में पेरे जाने के सिवा और कोई स्थिति नहीं है, जो उसे अपना अपराध स्वीकार

करा सके। इसका तो मुझे जरा भी भय नहीं है कि ब्राह्मण भूत बनकर हमको सतायेगा, या हमें उनकी वेदी बनाकर पूजनी पड़ेगी, यह भी जानता हूं कि पाप का दंड भी बहुधा नहीं मिलता; लेकिन हिंदू होने के कारण संस्कारों की शंका कुछ-कुछ बनी हुई है। ब्रह्महत्या का कलंक सिर पर लेते हुए आत्मा कांपती है। बस इतनी बात है। मैं आज रात को मौका देखकर जाऊंगा और इस संकट को काटने के लिए जो कुछ हो सकेगा, करुंगा। तिर जमा रखो।

3

आधी रात बीत चुकी थी। मिस्टर सिनहा घर से निकले और अकेले जगत पांडे को मनाने चले। बरगद के नीचे बिलकुल सन्नाटा था। अन्धकार ऐसा था मानो निशादेवी यहीं शयन कर रही हों। जगत पांडे की सांस जोर-जोर से चल रही थी मानो मौत जबरदस्ती घसीटे लिए जाती हो। मिस्टर सिनहा के रोएं खड़े हो गये। बुड्ढा कहीं मर तो नहीं रहा है? जेबी लालटेन निकाली और जगत के समीप जाकर बोले—पांडे जी, कहो क्या हाल है?

जगत पांडे ने आंखें खोलकर देखा और उठने की असफल चेष्टा करके बोला—मेरा हाल पूछते हो? देखते नहीं हो, मर रहा हूं?

सिनहा—तो इस तरह क्यों प्राण देते हो?

जगत—तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं क्या करूं?

सिनहा—मेरी तो यही इच्छा नहीं। हां, तुम अलबत्ता मेरा सर्वनाश करने पर तुले हुए हो। आखिर मैंने तुम्हारे डेढ़ सौ रूपये ही तो लिए हैं। इतने ही रुपये के लिए तुम इतना बड़ा अनुष्ठान कर रहे हो!

जगत—डेढ़ सौ रुपये की बात नहीं है। जो तुमने मुझे मिट्टी में मिला दिया। मेरी डिग्री हो गयी होती तो मुझे दस बीघे जमीन मिल जाती और सारे इलाके

में नाम हो जाता। तुमने मेरे डेढ़ सौ नहीं लिए, मेरे पांच हजार बिगाड़ दिये। पूरे पांच हजार; लेकिन यह घमंड न रहेगा, याद रखना कहे देता हूं, सत्यानाश हो जायगा। इस अदालत में तुम्हारा राज्य है; लेकिन भगवान के दरवार में विप्रों ही का राज्य है। विप्र का धन लेकर कोई सुखी नहीं रह सकता।

मिस्टर सिनहा ने बहुत खेद और लज्जा प्रकट की, बहुत अनुनय-से काम लिया और अन्त में पूछा—सच बताओ पांडे, कितने रुपये पा जाओ तो यह अनुष्ठान छोड़ दो।

जगत पांडे अबकी जोर लगाकर उठ बैठे और बड़ी उत्सुकता से बोले—पांच हजार से कौड़ी कम न लूंगा।

सिनहा—पांच हजार तो बहुत होते हैं। इतना जुल्म न करो।

जगत—नहीं, इससे कम न लूंगा।

यह कहकर जगत पांडे फिर लेट गया। उसने ये शब्द निश्चयात्मक भाव से कहे थे कि मिस्टर सिनहा को और कुछ कहने का साहस न हुआ। रुपये लाने घर चले; लेकिन घर पहुंचते-पहुंचते नीयत बदल गयी। डेढ़ सौ के बदले पांच हजार देते कलंक हुआ। मन में कहा—मरता है जाने दो, कहां की ब्रह्महत्या और कैसा पाप! यह सब पाखंड है। बदनामी न होगी? सरकारी मुलाजिम तो यों ही बदनाम होते हैं, यह कोई नई बात थोड़े ही है। बचा कैसे उठ बैठे थे। समझा होगा, उल्लू फंसा। अगर 6 दिन के उपवास करने से पांच हजार मिले तो मैं महीने में कम से कम पांच मरतबा यह अनुष्ठान करूं। पांच हजार नहीं, कोई मुझे एक ही हजार दे दे। यहां तो महीने भर नाक रगड़ता हूं तब जाके 600 रुपये के दर्शन होते हैं। नोच-खसोट से भी शायद ही किसी महीने में इससे ज्यादा मिलता हो। बैठा मेरी राह देख रहा होगा। लेना रुपये, मुंह मीठ हो जायगा।

वह चारपाई पर लेटना चाहते थे कि उनकी पत्नी जी आकर खड़ी हो गयीं। उनक सिर के बाल खुले हुए थे। आंखें सहमी हुई, रह-रहकर कांप उठती थीं। मुंह से शब्द न निकलता था। बड़ी मुश्किल से बोलीं—आधी रात तो हो गई होगी? तुम जगत पांडे के पास चले जाओ। मैंने अभी ऐसा बुरा सपना देखा है कि अभी तक कलेजा धड़क रहा है, जान संकट में पड़ी हुई है। जाके किसी तरह उसे टालो।

मिस्टर सिनहा—वहीं से तो चला आ रहा हूं। मुझे तुमसे ज्यादा फिक्र है। अभी आकर खड़ा ही हुआ था कि तुम आयी।

पत्नी—अच्छा! तो तुम गये थे! क्या बातें हुईं, राजी हुआ।

सिनहा—पांच हजार रुपये मांगता है!

पत्नी—पांच हजार!

सिनहा—कौड़ी कम नहीं कर सकता और मेरे पास इस वक्त एक हजार से ज्यादा न होंगे।

पत्नी ने एक क्षण सोचकर कहा—जितना मांगता है उतना ही दे दो, किसी तरह गला तो छूट। तुम्हारे पास रुपये न हों तो मैं दे दूंगी। अभी से सपने दिखाई देन लगे हैं। मरा तो प्राण कैसे बचेंगे। बोलता-चालता है न?

मिस्टर सिनहा अगर आबनूस थे तो उनकी पत्नी चंदन; सिनहा उनके गुलाम थे, उनके इशारों पर चलते थे। पत्नी जी भी पति-शासन में कुशल थीं। सौंदर्य और अज्ञान में अपवाद है। सुंदरी कभी भोली नहीं होती। वह पुरुष के मर्मस्थल पर आसन जमाना जानती है!

सिनहा—तो लाओ देता आऊं; लेकिन आदमी बड़ा चग्घड़ है, कहीं रुपये लेकर सबको दिखाता फिरे तो?

पत्नी—इसको यहां से इसी वक्त भागना होगा।

सिनहा—तो निकालो दे ही दूं। जिंदगी में यह बात भी याद रहेगी।

पत्नी—ने अविश्वास भाव से कहा—चलो, मैं भी चलती हूं। इस वक्त कौन देखता है?

पत्नी से अधिक पुरुष के चरित्र का ज्ञान और किसी को नहीं होता। मिस्टर सिनहा की मनोवृत्तियों को उनकी पत्नी जी खूब जानती थीं। कौन जान रास्ते में रुपये कहीं छिपा दें, और कह दें दे आए। या कहने लगें, रुपये लेकर भी नहीं टलता तो मैं क्या करूं। जाकर संदूक से नोटों के पुलिंदे निकाले और उन्हें चादर में छिपा कर मिस्टर सिनहा के साथ चलीं। सिनहा के मुंह पर झाड़ू-सी फिरी थी। लालटेन लिए पछताते चले जाते थे। 5000 रु. निकले जाते हैं। फिर इतने रुपये कब मिलेंगे; कौन जानता है? इससे तो कहीं अच्छा था दुष्ट मर ही जाता। बला से बदनामी होती, कोई मेरी जेब से रुपये तो न छीन लेता। ईश्वर करे मर गया हो!

अभी तक दोनों आदमी फाटक ही तकम आए थे कि देखा, जगत पांडे लाठी टेकता चला आता है। उसका स्वरूप इतना डरावना था मानो श्मशान से कोई मुरदा भागा आता हो।

पत्नी जी बोली—महाराज, हम तो आ ही रहे थे, तुमने क्यों कष्ट किया? रुपये ले कर सीधे घर चले जाओगे न?

जगत—हां-हां, सीधा घर जाऊंगा। कहां हैं रुपये देखूं!

पत्नी जी ने नोटों का पुलिंदा बाहर निकाला और लालटेन दिखा कर बोलीं—गिन लो। 5000 रुपये हैं!

पांडे ने पुलिंदा लिया और बैठ कर उलट-पुलट कर देखने लगा। उसकी आंखें एक नये प्रकाश से चमकने लगी। हाथों में नोटों को तौलता हुआ बोला—पूरे पांच हजार हैं?

पत्नी—पूरे गिन लो?

जगत—पांच हजार में दो टोकरी भर जायगी! (हाथों से बताकर) इतने सारे पांच हजार!

सिनहा—क्या अब भी तुम्हें विश्वास नहीं आता?

जगत—हैं-हैं, पूरे हैं पूरे पांच हजार! तो अब जाऊं, भाग जाऊं?

यह कह कर वह पुलिंदा लिए कई कदम लड़खड़ाता हुआ चला, जैसे कोई शराबी, और तब धम से जमीन पर गिर पड़ा। मिस्टर सिनहा लपट कर उठाने दौड़े तो देखा उसकी आंखें पथरा गयी हैं और मुख पीला पड़ गया है। बोले—पांडे, क्या कहीं चोट आ गयी?

पांडे ने एक बार मुंह खोला जैसे मरी हुई चिड़िया सिर लटका चोंच खोल देती है। जीवन का अंतिम धागा भी टूट गया। ओंठ खुले हुए थे और नोटों का पुलिंदा छाती पर रखा हुआ था। इतने में पत्नी जी भी आ पहुंची और शव को देखकर चौंक पड़ीं!

पत्नी—इसे क्या हो गया?

सिनहा—मर गया और क्या हो गया?

पत्नी—(सिर पीट कर) मर गया! हाय भगवान्! अब कहां जाऊं?

यह कह कर बंगले की ओर बड़ी तेजी से चलीं। मिस्टर सिनहा ने भी नोटो का पुलिंदा शव की छाती पर से उठा लिया और चले।

पत्नी—ये रुपये अब क्या होंगे?

सिनहा—किसी धर्म-कार्य में दे दूंगा।

पत्नी—घर में मत रखना, खबरदार! हाय भगवान!

4

दूसरे दिन सारे शहर में खबर मशहूर हो गयी—जगत पांडे ने जंट साहब पर जान दे दी। उसका शव उठा तो हजारों आदमी साथ थे। मिस्टर सिनहा को खुल्लम-खुल्ला गालियां दी जा रही थीं।

संध्या समय मिस्टर सिनहा कचहरी से आ कर मन मार बैठे थे कि नौकरों ने आ कर कहा—सरकार, हमको छुट्टी दी जाय! हमारा हिसाब कर दीजिए। हमारी बिरादरी के लोग धमकते हैं कि तुम जंट साहब की नौकरी करोगे तो हुक्का-पानी बंद हो जायगा।

सिनहा ने झल्ला कर कहा—कौन धमकाता है?

कहार—किसका नाम बताएं सरकार! सभी तो कह रहे हैं।

रसोइया—हुजूर, मुझे तो लोग धमकाते हैं कि मन्दिर में न घुसने पाओगे।

साईस—हुजूर, बिरादरी से बिगाड़ करक हम लोग कहां जाएंगे? हमारा आज से इस्तीफा है। हिसाब जब चाहे कर दीजिएगा।

मिस्टर सिनहा ने बहुत धमकाया फिर दिलासा देने लगे; लेकिन नौकरों ने एक न सुनी। आध घण्टे के अन्दर सबों ने अपना-अपना रास्ता लिया। मिस्टर

सिनहा दांत पीस कर रह गए; लेकिन हाकिमों का काम कब रुकता है? उन्होंने उसी वक्त कोतवाल को खबर कर दी और कई आदमी बेगार में पकड़ आए। काम चल निकला।

उसी दिन से मिस्टर सिनहा और हिंदू समाज में खींचतान शुरु हुई। धोबी ने कपड़े धोन बंद कर दिया। ग्वाले ने दूध लाने में आना-कानी की। नाई ने हजामत बनानी छोड़ी। इन विपत्तियों पर पत्नी जी का रोना-धोना और भी गजब था। इन्हें रोज भयंकर स्वप्न दिखाई देते। रात को एक कमरे से दूसरे में जाते प्राण निकलते थे। किसी को जरा सिर भी दुखता तो नहीं में जान समा जाती। सबसे बड़ी मुसीबत यह थी कि अपने सम्बन्धियों ने भी आना-जाना छोड़ दिया। एक दिन साले आए, मगर बिना पानी पिये चले गए। इसी तरह एक बहनोई का आगमन हुआ। उन्होंने पान तक न खाया। मिस्टर सिनहा बड़े धैर्य से यह सारा तिरस्कार सहते जाते थे। अब तक उनकी आर्थिक हानि न हुई थी। गरज के बावले झक मार कर आते ही थे और नजर-नजराना मिलता ही था। फिर विशेष चिंता का कोई कारण न था।

लेकिन बिरादरी से वैर करना पानी में रह कर मगर से वैर करने जैसे है। कोई-न-कोई ऐसा अवसर ही आ जाता है, जब हमको बिरादरी के सामने सिर झुकाना पड़ता है। मिस्टर सिनहा को भी साल के अन्दर ही ऐसा अवसर आ पड़ा। यह उनकी पुत्री का विवाह था। यही वह समस्या है जो बड़े-बड़े हेकड़ों का घमंड चूर कर देती है। आप किसी के आने-जाने की परवा न करें, हुक्का-पानी, भोज-भात, मेल-जोल किसी बात की परवा न करे; मगर लड़की का विवाह तो न टलने वाली बला है। उससे बचकर आप कहां जाएंगे! मिस्टर सिनहा को इस बात का दगदगा तो पहिले ही था कि त्रिवेणी के विवाह में बाधाएं पड़ेगी; लेकिन उन्हें विश्वास था कि द्रव्य की अपार शक्ति इस मुश्किल को हल कर देगी। कुछ दिनों तक उन्होंने जान-बूझ कर टाला कि शायद इस आंधी का जोर कुछ कम हो जाय; लेकिन जब त्रिवेणी को सोलहवां साल समाप्त हो गया तो टाल-मटोल की गुंजाइश न रही। संदेशे भेजने लगे; लेकिन

जहां संदेशिया जाता वहीं जवाब मिलता—हमें मंजूर नही। जिन घरों में साल-भर पहले उनका संदेशा पा कर लोग अपने भाग्य को सराहते, वहां से अब सूखा जवाब मिलता था—हमें मंजूर नहीं। मिस्टर सिनहा धन का लोभ देते, जमीन नजर करने को कहते, लड़के को विलायत भेज कर ऊंची शिक्षा दिलाने का प्रस्ताव करते किंतु उनकी सारी आयोजनाओं का एक ही जवाब मिलता था—हमें मंजूर नहीं। ऊंचे घरानों का यह हाल देखकर मिस्टर सिनहा उन घरानों में संदेश भेजने लगे, जिनके साथ पहले बैठकर भोजन करने में भी उन्हें संकोच होता था;लेकिन वहां भी वही जवाब मिला—हमें मंजूर नही। यहां तक कि कई जगह वे खुद दौड़-दौड़ कर गये। लोगों की मिन्नतें कीं, पर यही जवाब मिला—साहब, हमें मंजूर नहीं। शायद बहिष्कृत घरानों में उनका संदेश स्वीकार कर लिया जाता; पर मिस्टर सिनहा जान-बूझकर मक्खी न निगलना चाहते थे। ऐसे लोगों से सम्बन्ध न करना चाहते थे जिनका बिरादरी में काई स्थान न था। इस तरह एक वर्ष बीत गया।

मिसेज सिनहा चारपाई पर पड़ी कराह रही थीं, त्रिवेणी भोजन बना रही थी और मिस्टर सिनहा पत्नी के पास चिंता में डूबे बैठे हुए थे। उनके हाथ में एक खत था, बार-बार उसे देखते और कुछ सोचने लगते थे। बड़ी देर के बाद रोगिणी ने आंखें खोलीं और बोलीं—अब न बचूंगी पांडे मेरी जान लेकर छोड़ेगा। हाथ में कैसा कागज है?

सिनहा—यशोदानंदन के पास से खत आया हैं। पाजी को यह खत लिखते हुए शर्म नहीं आती, मैंने इसकी नौकरी लगायी। इसकी शादी करवायी और आज उसका मिजाज इतना बढ़ गया है कि अपने छोटे भाई की शादी मेरी लड़की से करना पसंद नहीं करता। अभागे के भाग्य खुल जाते!

पत्नी—भगवान्, अब ले चलो। यह दुर्दशा नहीं देखी जाती। अंगूर खाने का जी चाहता है, मंगवाये है कि नहीं?

सिनाह—मैं जाकर खुद लेता आया था।

यह कहकर उन्होंने तश्तरी में अंगूर भरकर पत्नी के पास रख दिये। वह उठा-उठा कर खाने लगीं। जब तश्तरी खाली हो गयी तो बोलीं—अब किसके यहां संदेशा भेजोगे?

सिनहा—किसके यहां बताऊं! मेरी समझ में तो अब कोई ऐसा आदमी नहीं रह गया। ऐसी बिरादरी में रहने से तो यह हजार दरजा अच्छा है कि बिरादरी के बाहर रहूं। मैंने एक ब्राह्मण से रिश्वत ली। इससे मुझे इनकार नहीं। लेकिन कौन रिश्वत नहीं लेता? अपने गौं पर कोई नहीं चूकता। ब्राह्मण नहीं खुद ईश्वर ही क्यों न हों, रिश्वत खाने वाले उन्हें भी चूस लेंगे। रिश्वत देने वाला अगर कोई निराश होकर अपने प्राण देता है तो मेरा क्या अपराध! अगर कोई मेरे फैसले से नाराज होकर जहर खा ले तो मैं क्या कर सकता हूं। इस पर भी मैं प्रायश्चित करने को तैयार हूं। बिरादरी जो दंड दे, उसे स्वीकार करने को तैयार हूं। सबसे कह चुका हूं मुझसे जो प्रायश्चित चाहो करा लो पर कोई नहीं सुनता। दंड अपराध के अनुकूल होना चाहिए, नहीं तो यह अन्याय है। अगर किसी मुसलमान का छुआ भोजन खाने के लिए बिरादरी मुझे काले पानी भेजना चाहे तो मैं उसे कभी न मानूंगा। फिर अपराध अगर है तो मेरा है। मेरी लड़की ने क्या अपराध किया है। मेरे अपराध के लिए लड़की को दंड देना सरासर न्याय-विरुद्ध है।

पत्नी—मगर करोगे क्या? और कोई पंचायत क्यों नहीं करते?

सिनहा—पंचायत में भी तो वही बिरादरी के मुखिया लोग ही होंगे, उनसे मुझे न्याय की आशा नहीं। वास्तव में इस तिरस्कार का कारण ईर्ष्या है। मुझे देखकर सब जलते हैं और इसी बहाने वे मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। मैं इन लोगों को खूब समझता हूं।

पत्नी—मन की लालसा मन में रह गयी। यह अरमान लिये संसार से जाना पड़ेगा। भगवान् की जैसी इच्छा। तुम्हारी बातों से मुझे डर लगता है कि मेरी

बच्ची की न-जाने क्या दशा होगी। मगर तुमसे मेरी अंतिम विनय यही है कि बिरादरी से बाहर न जाना, नहीं तो परलोक में भी मेरी आत्मा को शांति न मिलेगी। यह शोक मेरी जान ले रहा है। हाय, बच्ची पर न-जाने क्या विपत्ति आने वाली है।

यह कहते मिसेज सिनहा की आंखें में आंसू बहने लगे। मिस्टर सिनहा ने उनको दिलासा देते हुए कहा—इसकी चिंता मत करो प्रिये, मेरा आशय केवल यह था कि ऐसे भाव मन में आया करते हैं। तुमसे सच कहता हूं, बिरादरी के अन्याय से कलेजा छलनी हो गया है।

पत्नी—बिरादरी को बुरा मत कहो। बिरादरी का डर न हो तो आदमी न जाने क्या-क्या उत्पात करे। बिरादरी को बुरा न कहो। (कलेजे पर हाथ रखकर) यहां बड़ा दर्द हो रहा है। यशोदानंद ने भी कोरा जवाब दे दिया। किसी करवट चैन नहीं आता। क्या करुं भगवान्।

सिनहा—डाक्टर को बुलाऊं?

पत्नी—तुम्हारा जी चाहे बुला लो, लेकिन मैं बचूंगी नहीं। जरा तिब्बो को बुला लो, प्यार कर लूं। जी डूबा जाता है। मेरी बच्ची! हाय मेरी बच्ची!!

***

धिक्कार (2)

ईरान और यूनान में घोर संग्राम हो रहा था। ईरानी दिन-दिन बढ़ते जाते थे और यूनान के लिए संकट का सामना था। देश के सारे व्यवसाय बंद हो गये थे, हल की मुठिया पर हाथ रखने वाले किसान तलवार की मुठिया पकड़ने के लिए मजबूर हो गये, डंडी तौलने वाले भाले तौलते थे। सारा देश आत्म-रक्षा के लिए तैयार हो गया था। फिर भी शत्रु के कदम दिन-दिन आगे ही बढ़ते आते थे। जिस ईरान को यूनान कई बार कूचल चुका था, वही ईरान आज क्रोध के आवेग की भांति सिर पर चढ़ आता था। मर्द तो रणक्षेत्र में सिर कटा रहे थे और स्त्रियां दिन-दिन की निराशाजनक खबरें सुनकर सूखी जाती थीं। क्योंकर लाज की रक्षा होगी? प्राण का भय न था, सम्पत्ति का भय न था, भय था मर्यादा का। विजेता गर्व से मतवाले होकर यूनानी ललनाओं को घूरेंगे, उनके कोमल अंगों को स्पर्श करेंगे, उनको कैद कर ले जायेंगे! उस विपत्ति की कल्पना ही से इन लोगों के रोयें खड़े हो जाते थे।

आखिर जब हालत बहुत नाजुक हो गयी तो कितने ही स्त्री-पुरुष मिलकर डेल्फी के मंदिर में गये और प्रश्न किया—देवी, हमारे ऊपर देवताओं की यह वक्र-दृष्टि क्यों है? हमसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ है? क्या हमने नियमों का पालन नहीं किया, कुरबानियां नहीं कीं, व्रत नहीं रखे? फिर देवताओं ने क्यों हमारे सिरों से अपनी रक्षा का हाथ उठा लिया?

पुजारिन ने कहा—देवताओं की असीम कृपा भी देश को द्रोही के हाथ से नहीं बचा सकती। इस देश में अवश्य कोई-न-कोई द्रोही है। जब तक उसका वध न किया जायेगा, देश के सिर से यह संकट न टलेगा।

'देवी, वह द्रोही कौन है?

'जिस घर से रात को गाने की ध्वनि आती हो, जिस घर से दिन को सुगंध की लपटें आती हों, जिस पुरुष की आंखों में मद की लाली झलकती हो, वही देश का द्रोही है।'

लोगों ने द्रोही का परिचय पाने के लिए और कितने ही प्रश्न किये; पर देवी ने कोई उत्तर न दिया।

2

यूनानियों ने द्रोही की तलाश करनी शुरू की। किसके घर में से रात को गाने की आवाजें आती हैं। सारे शहर में संध्या होते स्यापा-सा छा जाता था। अगर कहीं आवाजें सुनायी देती थीं तो रोने की; हंसी और गाने की आवाज कहीं न सुनायी देती थी।

दिन को सुगंध की लपटें किस घर से आती हैं? लोग जिधर जाते थे, किसे इतनी फुरसत थी कि घर की सफाई करता, घर में सुगंध जलाता; धोबियों का अभाव था अधिकांश लड़ने के लिए चले गये थे, कपड़े तक न धुलते थे; इत्र-फुलेल कौन मलता!

किसकी आंखों में मद की लाली झलकती है? लाल आंखें दिखाई देती थी; लेकिन यह मद की लाली न थी, यह आंसुओं की लाली थी। मदिरा की दुकानों पर खाक उड़ रही थी। इस जीवन ओर मृत्यु के संग्राम में विलास की किसे सूझती! लोगों ने सारा शहर छान मारा लेकिन एक भी आंख ऐसी नजर न आयी जो मद से लाल हो।

कई दिन गुजर गये। शहर में पल-पल पर रणक्षेत्र से भयानक खबरें आती थीं और लोगों के प्राण सूख जाते थे।

आधी रात का समय था। शहर में अंधकार छाया हुआ था, मानो श्मशान हो। किसी की सूरत न दिखाई देती थी। जिन नाट्यशालाओं में तिल रखने की

जगह न मिलती थी, वहां सियार बोल रहे थे। जिन बाजारों में मनचले जवान अस्त्र-शस्त्र सजायें ऐंठते फिरते थे, वहां उल्लू बोल रहे थे। मंदिरों में न गाना होता था न बजाना। प्रासादों में अंधकार छाया हुआ था। एक बूढ़ा यूनानी जिसका इकलौता लड़का लड़ाई के मैदान में था, घर से निकला और न-जाने किन विचारों की तरंग में देवी के मंदिर की ओर चला। रास्ते में कहीं प्रकाश न था, कदम-कदम पर ठोकरें खाता था; पर आगे बढ़ता चला जाता। उसने निश्चय कर लिया कि या तो आज देवी से विजय का वरदान लूंगा या उनके चरणों पर अपने को भेंट कर दूंगा।

3

सहसा वह चौंक पड़ा। देवी का मंदिर आ गया था। और उसके पीछे की ओर किसी घर से मधुर संगीत की ध्वनि आ रही थी। उसको आश्चर्य हुआ। इस निर्जन स्थान में कौन इस वक्त रंगरेलियां मना रहा है। उसके पैरों में पर लग गये, मंदिर के पिछवाड़े जा पहुंचा।

उसी घर से जिसमें मंदिर की पुजारिन रहती थी, गाने की आवाजें आती थीं! वृद्ध विस्मित होकर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। चिराग तले अंधेरा! देवी के मंदिर के पिछवाड़े यह अंधेर?

बूढ़े ने द्वार झांका; एक सजे हुए कमरे में मोमबत्तियां झाड़ों में जल रही थीं, साफ-सुथरा फर्श बिछा था और एक आदमी मेज पर बैठा हुआ गा रहा था। मेज पर शराब की बोतल और प्यालियां रखी हुई थीं। दो गुलाम मेज के सामने हाथ में भोजन के थाल खड़े थे, जिसमें से मनोहर सुगंध की लपटें आ रही थीं।

बूढ़े यूनानी ने चिल्लाकर कहा—यही देशद्रोही है, यही देशद्रोही है!

मंदिर की दीवारों ने दुहराया—द्रोही है!

बगीचे की तरफ से आवाज आयी—द्रोही है!

मंदिर की पुजारिन ने घर में से सिर निकालकर कहा—हां, द्रोही है!

यह देशद्रोही उसी पुजारिन का बेटा पासोनियस था। देश में रक्षा के जो उपाय सोचे जाते, शत्रुओं का दमन करने के लिए जो निश्चय किय जाते, उनकी सूचना यह ईरानियों को दे दिया करता था। सेनाओं की प्रत्येक गति की खबर ईरानियों को मिल जाती थी और उन प्रयत्नों को विफल बनाने के लिए वे पहले से तैयार हो जाते थे। यही कारण था कि यूनानियों को जान लड़ा देने पर भी विजय न होती थी। इसी कपट से कमाये हुये धन से वह भोग-विलास करता था। उस समय जब कि देश में घोर संकट पड़ा हुआ था, उसने अपने स्वदेश को अपनी वासनाओं के लिए बेच दिया। अपने विलास के सिवा और किसी बात की चिंता न थी, कोई मरे या जिये, देश रहे या जाये, उसकी बला से। केवल अपने कुटिल स्वार्थ के लिए देश की गरदन में गुलामी की बेड़ियां डलवाने पर तैयार था। पुजारिन अपने बेटे के दुराचरण से अनभिज्ञ थी। वह अपनी अंधेरी कोठरी से बहुत कम निकलती, वहीं बैठी जप-तप किया करती थी। परलोक-चिंतन में उसे इहलोक की खबर न थी, मनेन्द्रियों ने बाहर की चेतना को शून्य-सा कर दिया था। वह इस समय भी कोठरी के द्वार बंद किये, देवी से अपने देश के कल्याण के लिए वन्दना कर रही थी कि सहसा उसके कानों में आवाज आयी—यही द्रोही है, यही द्रोही है!

उसने तुरंत द्वार खोलकर बाहर की ओर झांका, पासोनियम के कमरे से प्रकाश की रेखाएं निकल रही थीं और उन्हीं रेखाओं पर संगीत की लहरें नाच रही थीं। उसके पैर-तले से जमीन-सी निकल गयी, कलेजा धक्-से हो गया। ईश्वर! क्या मेरा बेटा देशद्रोही है? आप-ही-आप, किसी अंत:प्रेरणा से पराभूत होकर वह चिल्ला उठी—हां, यही देशद्रोही है!

यूनानी स्त्री-पुरूषों के झुंड-के-झुंड उमड़ पड़े और पासोनियस के द्वार पर खड़े होकर चिल्लाने लगे-यही देशद्राही है!

पासोनियस के कमरे की रोशनी ठंडी हो गयी, संगीत भी बंद था; लेकिन द्वार पर प्रतिक्षण नगरवासियों का समूह बढ़ता जाता था और रह-रह कर सहस्त्रों कंठो से ध्वनि निकलती थी—यही देशद्रोही है!

लोगों ने मशालें जलायी और अपने लाठी-डंडे संभाल कर मकान में घुस पड़े। कोई कहता था—सिर उतार लो। कोई कहता था—देवी के चरणों पर बलिदान कर दो। कुछ लोग उसे कोठे से नीचे गिरा देने पर आग्रह कर रहे थे।

पासोनियस समझ् गया कि अब मुसीबत की घडी सिर पर आ गयी। तुरंत जीने से उतरकर नीचे की ओर भागा। और कहीं शरण की आशा न देखकर देवी के मंदिर में जा घुसा।

अब क्या किया जाये? देवी की शरण जाने वाले को अभय-दान मिल जाता था। परम्परा से यही प्रथा थी? मंदिर में किसी की हत्या करना महापाप था।

लेकिन देशद्रोही को इसने सस्ते कौन छोडता? भांति-भांति के प्रस्ताव होने लगे—'सूअर का हाथ पकडकर बाहर खींच लो।'

'ऐसे देशद्रोही का वध करने के लिए देवी हमें क्षमा कर देंगी।'

'देवी, आप उसे क्यों नहीं निगल जाती?'

'पत्थरों से मारों, पत्थरो से; आप निकलकर भागेगा।'

'निकलता क्यों नहीं रे कायर! वहां क्या मुंह में कालिख लगाकर बैठा हुआ है?'

रात भर यही शोर मचा रहा और पासोनियस न निकला। आखिर यह निश्चय हुआ कि मंदिर की छत खोदकर फेंक दी जाये और पासोनियस दोपहर की धूप और रात की कडाके की सरदी में आप ही आप अकड जाये। बस फिर क्या था। आन की आन में लोगों ने मंदिर की छत और कलस ढा दिये। अभगा पासोनियस दिन-भर तेज धूप में खड़ा रहा। उसे जोर की प्यास लगी; लेकिन पानी कहां? भूख लगी, पर खाना कहां? सारी जमीन तवे की भांति जलने लगी; लेकिन छांह कहां? इतना कष्ट उसे जीवन भर में न हुआ था। मछली की भांति तडपता था ओर चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को पुकारता था; मगर वहां कोई उसकी पुकार सुनने वाला न था। बार-बार कसमें खाता था कि अब फिर मुझसे ऐसा अपराध न होगा; लेकिन कोई उसके निकट न आता था। बार-बार चाहता था कि दीवार से टकरा कर प्राण दे दे; लेकिन यह आशा रोक देती थी कि शायद लोगों को मुझ पर दया आ जाये। वह पागलों की तरह जोर-जोर से कहने लगा—मुझे मार डालो, मार डालो, एक क्षण में प्राण ले लो, इस भांति जला-जला कर न मारो। ओ हत्यारों, तुमको जरा भी दया नहीं।

दिन बीता और रात—भयंकर रात—आयी। ऊपर तारागण चमक रहे थे मानो उसकी विपत्ति पर हंस रहे हों। ज्यों-ज्यों रात बीतती थी देवी विकराल रूप धारण करती जाती थी। कभी वह उसकी ओर मुंह खोलकर लपकती, कभी उसे जलती हुई आंखो से देखती। उधर क्षण-क्षण सरदी बढती जाती थी, पासोनियस के हाथ-पांव अकडने लगे, कलेजा कांपने लगा। घुटनों में सिर रखकर बैठ गया और अपनी किस्मत को रोने लगा। कुरते की खींचकर कभी पैरों को छिपाता, कभी हाथों को, यहां तक कि इस खींचातानी में कुरता भी फट गया। आधी रात जाते-जाते बर्फ गिरने लगी। दोपहर को उसने सोचा गरमी ही सबसे कष्टदायक है। ठंड के सामने उसे गरमी की तकलीफ भूल गयी। आखिर शरीर में गरमी लाने के लिए एक हिमकत सूझी। वह मंदिर में इधर-उधर दौडने लगा। लेकिन विलासी जीव था, जरा देर में हांफ कर गिर पड़ा।

प्रात:काल लोगों ने किवाड खोले तो पासोनिसय को भूमि पर पड़े देखा। मालूम होता था, उसका शरीर अकड गया है। बहुत चीखने-चिल्लाने पर उसने आखें खोली; पर जगह से हिल न सका। कितनी दयनीय दशा थी, किंतु किसी को उस पर दया न आयी। यूनान में देशद्रोह सबसे बडा अपराध था और द्रोही के लिए कहीं क्षमा न थी, कहीं दया न थी।

एक—अभी मरा है?

दूसरा—द्रोहियों को मौत नहीं आती!

तीसरा—पडा रहने दो, मर जायेगा!

चौथा—मक्र किये हुए है?

पांचवा—अपने किये की सजा पा चुका है, अब छोड देना चाहिए!

सहसा पासोनियस उठ बैठा और उद्दण्ड भाव से बोला—कौन कहता है कि इसे छोड देना चाहिए! नहीं, मुझे मत छोडना, वरना पछताओगे! मैं स्वार्थी दूं; विषय-भोगी हूं, मुझ पर भूलकर भी विश्वास न करना। आह! मेरे कारण तुम लोगों को क्या-क्या झेलना पडा, इसे सोचकर मेरा जी चाहता है कि अपनी इंद्रियों को जलाकर भस्म कर दूं। मैं अगर सौ जन्म लेकर इस पाप का प्रायश्चित करूं, तो भी मेरा उद्धार न होगा। तुम भूलकर भी मेरा विश्वास न करो। मुझे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं। विलास के प्रेमी सत्य का पालन नहीं कर सकते। मैं अब भी आपकी कुछ सेवा कर सकता हूं, मुझे ऐसे-ऐसे गुप्त रहस्य मालूम हैं, जिन्हें जानकर आप ईरानियों का संहार कर सकते है; लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है और आपसे भी यह कहता हूं कि मुझ पर विश्वास न कीजिए। आज रात को देवी की मैंने सच्चे दिल से वंदना की है और उन्होनें मुझे ऐसे यंत्र बताये हैं, जिनसे हम शत्रुओं को परास्त कर सकते हैं, ईरानियों के बढते हुए दल को आज भी आन की आन में उड़ा सकते

है। लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैं यहां से बाहर निकल कर इन बातों को भूल जाऊंगा। बहुत संशय हैं, कि फिर ईरानियों की गुप्त सहायता करने लगूं। इसलिए मुझ पर विश्वास न कीजिए।

एक यूनानी—देखो-देखो क्या कहता है?

दूसरा—सच्चा आदमी मालूम होता है।

तीसरा—अपने अपराधों को आप स्वीकार कर रहा है।

चौथा—इसे क्षमा कर देना चाहिए और यह सब बातें पूछ लेनी चाहिए।

पांचवा—देखो, यह नहीं कहता कि मुझे छोड़ दो। हमको बार-बार याद दिलाता जाता है
कि मुझ पर विश्वास न करो!

छठा—रात भर के कष्ट ने होश ठंडे कर दिये, अब आंखे खुली है।

पासोनियस—क्या तुम लोग मुझे छोड़ने की बातचीत कर रहे हो? मैं फिर कहता हूं, मैं विश्वास के योग्य नहीं हूं। मैं द्रोही हूं। मुझे ईरानियों के बहुत-से भेद मालूम हैं, एक बार उनकी सेना में पहुंच जाऊं तो उनका मित्र बनकर सर्वनाश कर दूं, पर मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। एक यूनानी—धोखेबाज इतनी सच्ची बात नहीं कह सकता!

दूसरा—पहले स्वार्थांध हो गया था; पर अब आंखे खुली हैं!

तीसरा—देखद्रोही से भी अपने मतलब की बातें मालूम कर लेने में कोई हानि नहीं है। अगर वह अपने वचन पूरे करे तो हमें इसे छोड़ देना चाहिए।

चौथा—देवी की प्रेरणा से इसकी कायापलट हुई है।

पांचवां—पापियों में भी आत्मा का प्रकाश रहता है और कष्ट पाकर जाग्रत हो जाता है। यह समझना कि जिसने एक बार पाप किया, वह फिर कभी पुण्य कर ही नहीं सकता, मान-चरित्र के एक प्रधान तत्व का अपवाद करना है।

छठा—हम इसको यहां से गाते-बजाते ले चलेंगे। जन-समूह को चकमा देना कितना आसान है।

जनसत्तावाद का सबसे निर्बल अंग यही है। जनता तो नेक और बद की तमीज नहीं रखती। उस पर धूर्तों, रंगे-सियारों का जादू आसानी से चल जाता है। अभी एक दिन पहले जिस पासोनियस की गरदन पर तलवार चलायी जा रही थी, उसी को जलूस के साथ मंदिर से निकालने की तैयारियां होने लगीं, क्योंकि वह धूर्त था और जानता था कि जनता की कील क्योंकर घुमायी जा सकती है।

एक स्त्री—गाने-बजाने वालों को बुलाओ, पासोनियस शरीफ है।

दूसरी—हां-हां, पहले चलकर उससे क्षमा मांगो, हमने उसके साथ जरूरत से ज्यादा सख्ती की।

पासोनियस—आप लोगों ने पूछा होता तो मैं कल ही कल ही सारी बातें आपको बता देता, तब आपको मालूम होता कि मुझे मार डालना उचित है या जीता रखना।

कई स्त्री-पुरूष—हाय-हाय हमसे बडी भूल हुई। हमारे सच्चे पासोनियस!

सहसा एक वृद्धा स्त्री किसी तरफ से दौडती हुई आयी और मंदिर के सबसे ऊंचे जीने पर खडी होकर बोली—तुम लोगों को क्या हो गया है? यूनान के बेटे आज इतने ज्ञानशून्य हो गये हैं कि झूठे और सच्चे में विवेक नहीं कर सकते? तुम पासोनियस पर विश्वास करते हो? जिस पासोनियस ने सैकड़ों स्त्रियों और

बालकों को अनाथ कर दिया, सैकडों घरों में कोई दिया जलाने वाला न छोड़ा, हमारे देवताओं का, हमारे पुरूषों का, घोर अपमान किया, उसकी दो-चार चिकनी-चुपड़ी बातों पर तुम इतने फूल उठे। याद रखो, अब की पासोनियस बाहर निकला तो फिर तुम्हारी कुशल नही। यूनान पर ईरान का राज्य होगा और यूनानी ललनाएं ईरानियों की कुदृष्टि का शिकार बनेंगी। देवी की आज्ञा है कि पासोनियस फिर बाहर न निकलने पाये। अगर तुम्हें अपना देश प्यारा है, अपनी माताओं और बहनों की आबरू प्यारी है तो मंदिर के द्वार को चिन दों। जिससे देशद्रोही को फिर बाहर न निकलने और तुम लोगों को बहकाने का मौका न मिले। यह देखो, पहला पत्थर मैं अपने हाथों से रखती हूं। लोगों ने विस्मित होकर देखा—यह मंदिर की पुजारिन और पासोनियस की माता थी। दम के दम में पत्थरों के ढेर लग गये और मंदिर का द्वार चुन दिया गया। पासोनियस भीतर दांत पीसता रह गया।

वीर माता, तुम्हें धन्य है! ऐसी ही माता से देश का मुख उज्ज्वल होता है, जो देश-हित के सामने मातृ-स्नेह की धूल-बराबर परवाह नहीं करतीं! उनके पुत्र देश के लिए होते हैं, देश पुत्र के लिए नहीं होता।

***